संजीवनी शारदा केन्द्र
सत्कर्म
संकल्प सिद्धि
संशाक
नमस्ते शारदे देवि काश्मीरपुरवासिनी।
त्वमाहं प्रार्थये नित्यं विद्या ज्ञानञ्च देहिमे॥

शारदा ग्रन्थ माला – 5

कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास की एक दिव्य विभूति

परमानन्द

1791 – 1879 ई.

प्रोफ़ेसर (डॉ0) भूषणलाल कौल

प्रकाशन प्रभाग
संजीवनी शारदा केन्द्र
आनन्दनगर बोड़ी, जम्मू ।

शारदा ग्रन्थ माला – 4

कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास की एक दिव्य विभूति

परमानन्द

(1791 – 1879 ई०)

प्रोफ़ेसर (डॉ०) भूषणलाल कौल

एम० ए०, पीएच०डी०, डी० लिट्

प्रकाशन प्रभाग

संजीवनी शारदा केन्द्र

आनन्दनगर बोड़ी, जम्मू ।

0191–2501480

'**परमानन्द**' – कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास की
एक दिव्य विभूति

लेखक – प्राफ़ेसर (डॉ0) भूषणलाल कौल

प्रकाशकः– संजीवनी शारदा केन्द्र, आनन्दनगर, बोड़ी, जम्मू –180 002।
0191–2501480

प्रकाशन वर्ष सन् 2005 ई0 – (प्रथम संस्करण) 500 प्रतियाँ

मूल्य : 20/– रू0

अक्षर संयोजन : शोभा क्रियेशन्स, 217ए0 7/7 नानक नगर, जम्मू।
0191–2438676

आवरण : विक्रम रैणा
मुद्रण :

प्रस्तावना

अपने ही देश के भीतर विस्थापन की यातना सहते हुए अस्तित्व–रक्षा की समस्या से जूझता जन–समूह अपने विगत इतिहास और सांस्कृतिक परम्परा के शेष बचे स्रोतों की रक्षा के लिए चिन्तित दिखाई दिया, ऐसा होना स्वाभाविक था। भौतिक सम्पदा, घर–द्वार, ज़मीन–जायदाद के खो जाने की उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी चिन्ता इस बात की है कि एक अल्पसंख्यक कश्मीरी अपनी पहचान खो रहा है।

प्रश्न यह है कि हज़ारों वर्षों से पल्लवित इस पहचान को कैसे सुरक्षित रखा जा सकता है। आज से केवल एक हज़ार वर्ष पूर्व बहुसंख्यक कश्मीरी आज देश–निष्कासित अल्पसंख्यक के रूप में जानवरों के समान जीवन जीने के लिए विवश है।

कश्मीर के इतिहास में यह स्थिति कई बार उत्पन्न हुई है। इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास अपने आपको दोहराता है लेकिन इस संकटकालीन स्थिति में अपनी पहचान को बनाये रखना न केवल हमारे लिये आवश्यक है, अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र की राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिये भी नितान्त आवश्यक है।

संजीवनी शारदा केन्द्र ने इसी उद्देश्य से एक योजना तैयार की है जिसमें कश्मीर के वैभवशाली अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों की स्मृति सुरक्षित रखने हेतु इतिहास के यथार्थ को ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर जन–मानस के सम्मुख प्रस्तुत किया जायेगा ताकि कोई अविवेकी दुस्साहस करके इतिहास के तथ्य को विकृत न कर सके।

कश्मीर संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र रहा है। हमने महान विभूतियों को जन्म दिया है जिनमें वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, मम्मट, कल्हण पण्डित, जगद्धरभट्ट, बिल्हण, वामन, रुद्रट, आनन्दवर्धन, उद्भट, कय्यट, भामह, क्षेमराज, जोनराज, श्रीवर, शुक आदि। विश्व–विख्यात शैवाचार्य, साहित्यकार, चिन्तक, इतिहास–लेखक और व्याकरण–पण्डित कश्मीर की भूमि से ही उपजे देश–रत्न हैं जिन्होंने अपने साधनात्मक जीवन का क्रियारत आदर्श स्थापित कर समाज और वर्ग को एक नई दिशा प्रदान की ।

कश्मीर के प्राचीन महान तीर्थस्थल, संस्कृति केन्द्र, विद्यापीठ, भव्य मन्दिर और आश्रम, शिवालय एवं शक्ति–स्थल आज ऐतिहासिक साक्ष्य बन कर पुरातत्ववेत्ताओं को खोज और अनुसन्धान की प्रेरणा देते हैं।

प्राचीन इतिहास के जाज्वल्यमान बुद्धिजीवियों, विचारकों, दार्शनिकों, कलाकारों, साहित्यकारों,शासकों और धर्माचारियों के विषय में जन–हित उपयोगी पुस्तिकाओं के लेखन, प्रकाशन और वितरण की योजना तैयार की गई। निर्णय यह हुआ कि नामी लेखकों को इस प्रकार की सामग्री तैयार करने हेतु आमंत्रित किया जाये और एक–एक प्रतिभासम्पन्न विभूति पर अलग से एक–एक पुस्तिका, जिसमें कम से कम 40–50 पृष्ठों पर प्रामाणिक, ज्ञानवर्धक, सर्वजन उपयोगी सामग्री दी गई हो, तैयार की जाये। इस प्रकार एक पुस्तिका केवल एक ही व्यक्ति अथवा संस्था से सम्बन्धित रहेगी । पुस्तिका लेखन के हेतु विद्वान बन्धुओं को नियत पारिश्रमिक देय होगा । पुस्तिका का प्रकाशन संजीवनी शारदा केन्द्र की ओर से होगा और प्रकाशन के सारे अधिकार केन्द्र के पास सुरक्षित रहेंगे।

जनता और सर्वसाधारण के लिए कल्याण भावना से प्रेरित होकर यह निश्चित किया गया कि पुस्तिका का मूल्य इस प्रकार से निश्चित किया जायेगा कि एक सामान्य देश बन्धु भी इसको आसानी से खरीद सके।

आरम्भ में यह निश्चित हुआ कि निम्नलिखित दस विषयों को लेकर विद्वान बन्धुओं को लेखन हेतु आमंत्रित किया जाये :–

- ☐ अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, श्रीभट्ट, परमानन्द, सुय्या पण्डित, शिति कण्ठ, अरॅनिमाल, ललितादित्य, आनन्दवर्धन – इनके जीवन, व्यक्तिव एवं कृतित्व पर आधारित विस्तृत परिचयात्मक सामग्री को प्रकाश में लाना ही हमारा उद्देश्य है ।
- ☐ डॉ0 महाराज कृष्ण भरत द्वारा लिखित **'आद्यशक्ति का दिव्य स्थल उमानगरी'** नामक पुस्तक का प्रकाशन केन्द्र द्वारा 2005 ई0 में हुआ इसी प्रकार श्री प्रदीप कौल (खोड़बली) ने अंग्रेज़ी भाषा में Icons of Kashmir - Kshemendra आचार्य क्षेमेन्द्र पर पुस्तक लिखी । इसका प्रकाशन भी केन्द्र द्वारा 2005 ई0 में हुआ ।आज इसी श्रृंखला में 'कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास की एक दिव्य विभूति ' परमानन्द' पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है। इसे जनता तक पहुँचाने में हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है।

इस पुनीत कर्तव्य–कर्म को पूरा करने के लिये सर्वकल्याण हेतु सेवाभाव ही हमारा मार्गदर्शक होगा। इसी विश्वास के साथ इस काम को हाथ में लिया गया है।

– मुख्य सम्पादक

कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास की एक दिव्य विभूति

परमानन्द

(1791 – 1879 ई0)

19वीं शताब्दी में कश्मीरी भक्ति काव्य के इतिहास में पटवारी नन्दराम पण्डित उर्फ़ परमानन्द का योगदान उनके प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एवं साधनात्मक जीवन के अनुरूप महत्त्वपूर्ण भी है और ऐतिहासिक भी। परमानन्द के रचना संसार पर विचार करने के हेतु गहन अध्ययन (युग बोध) सांस्कृतिक अन्तर्दृष्टि एवं तत्कालीन युग की गहरी पहचान नितान्तावश्यक है। परमानन्द का व्यक्तित्व बहुमुखी था। एक गृहस्थ पटवारी होने के साथ–साथ वे योग–साधक तत्त्ववेत्ता, सृजनात्मक कलाकार, कृष्ण भक्त एवं शिवोपासक भी थे। कई तत्त्वों का अद्भुत मेल उनके व्यक्तित्व में देखने को मिलता है। वे गायक हैं, वादक हैं, विचारक हैं, वेदान्त दर्शन से प्रभावित एक सन्त हैं और सब से बढ़ कर अनन्य कृष्ण–भक्त हैं। मस्त–मौला सन्त हैं जो निजानुभूत सत्य को काग़द पर उतार कर व्यक्ति–चिन्तन की असीम सीमाओं का आभास दिलाता हुआ आनन्दावेश में अपने प्रिय आराध्य पर अटूट विश्वास तथा दृढ़ आस्था के पुष्प निछावर करता है। उन्हें भी जीवन में सफलताओं के साथ–साथ विफलताओं की यातना सहन करनी पड़ी। जीवन व्यवहार में वे असफल ही अधिक रहे हैं, यही कारण है कि धर्मपत्नी के शब्द–बाणों से वे

निरन्तर बिन्धते रहे। लेकिन सरस्वती का वरदहस्त पुत्र मालद्यद (परमानन्द की पत्नी) से बहुत आगे निकल चुका था। वह जीवन–पर्यन्त कांच के टुकड़े ही बटोरती रही कभी कंचन का वैभव न देख सकी।

मट्टन (मार्तण्ड) कश्मीर से कोई तीन–चार किलोमीटर दूर स्थित सीर कानिलगोण्ड गाँव में श्रीकृष्ण पटवारी के घर ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष सप्तमी सन् 1791 ई0 में एक पुत्ररत्न ने जन्म लिया। माँ का नाम था सरस्वती। परिवार सम्पन्न था और पुत्र जन्म ने कृष्ण पण्डित के जीवन में कुल–विस्तार की नई आशायें जगा दीं। पुत्र का नामकरण संस्कार हुआ और नाम रखा गया 'नन्दराम'।

नन्दराम की आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। अपने पिता कृष्ण पण्डित से उन्होंने गुरु दीक्षा ली।[1] कृष्ण पण्डित फ़ारसी भाषा के ज्ञाता थे। मुस्लिम राज्य में बिना उस ज्ञान के जीविका निर्वाह असम्भव था। उन्होंने अपने बेटे को फारसी भाषा की प्रारम्भिक जानकारी स्वयं प्रदान की तथा कुछ समय के बाद मकतब में भी दाखिल किया।

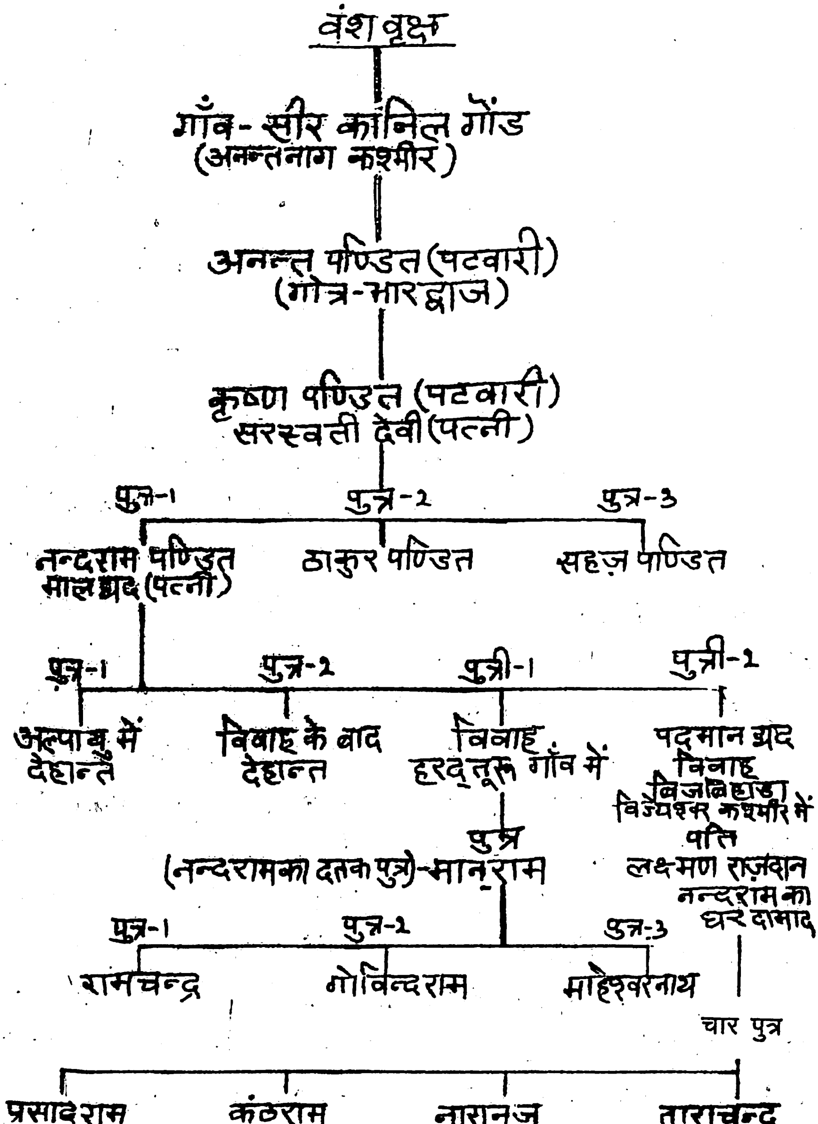
सीर कानिलगोंड से अस्थायी रूप में परिवार को मट्टन आकर रहना पड़ा क्योंकि पटवारी जी का स्थानान्तरण मट्टन में हुआ था।उस युग में पटवारी का काम एक खानदानी पेश बन गया था और अपने पुत्र के भावी जीवन के विषय में कृष्ण पण्डित की नज़र भी वहीं तक सीमित थी। उनके पिता अनन्त पण्डित भी पटवारी थे। सन् 1816 ई0 में पिताजी के देहान्त होने पर नन्दराम को पटवार खाने का चार्ज मिल गया और लगे बड़ी बड़ी रजिस्ट्रयों में खानापूरी करने और ज़मीन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ जोड़ने ।

नन्दराम का विवाह उनके पिता कृष्ण पण्डित के जीवनकाल में ही उनके एक पटवारी मित्र की पुत्री माल से हुआ जो बाद में मालद्यद नाम से चर्चित रहीं। बाल्यकाल से ही परमानन्द अद्भुत–अलौकिक के प्रति आकृष्ट थे। परंब्रह्म को जानने की

जिज्ञासा उनके मानस में दिन प्रतिदनि सशक्त हो रही थी जो उसे बहुधा अधीर भी कर देती थी। मट्टन (कश्मीर) हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। श्री अमरनाथ यात्रा के पथ पर एक पड़ाव – सूर्यदेव का अद्भुत विश्राम स्थल। यहाँ ग्रीष्म काल में सैंकड़ों की संख्या में साधु–सन्तों, महात्माओं और पण्डितों का आना जाना निरन्तर लगा रहता है। नन्दराम की भीतरी तड़प उसे व्याकुल कर रही थी, अपनी प्यास बुझाने के लिये साधु–सन्तों के क़रीब आने लगा। विचार गोष्ठियों एवं धर्म सभाओं में भाग लेने लगा। महात्माओं के व्याख्यान एवं धर्म भाषण सुनने में समय व्यतीत हो रहा था, इस प्रकार अध्यात्म पथ पर आगे बढ़ने की इच्छा गहराने लगी।

नन्दराम कमाऊ पटवारी नहीं था। मालद्यद के विचारानुसार पटवारी के पेशे पर एक कलंक । ऊपरी आय कुछ भी नहीं थी। वह अपने पटवारी पिता के आनन्दमय जीवन को देख चुकी थी। अतः पति–पत्नी में रोज़ झगड़े होने लगे। सम्बन्धों में शिथिलता आ गई। जिह्वा के चाबुकों की मार उस पर रोज़ पड़ती । परिवारिक जीवन में खटास आ गई और नन्दराम का मन गृहस्थी से उचट गया। दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि नन्दराम के वैवाहिक जीवन में दो पुत्र और दो पुत्रियों ने जन्म लिया। एक पुत्र किशोरावस्था में ही चल बसा और दूसरा विवाह के पश्चात् अपनी पत्नी और एक बेटी को पीछे छोड़ कर काल क्वलित हुआ । इस दुर्घटना से नन्दराम भीतर ही भीतर टूट गये। पुत्रशोक से विह्वल होकर उन्हें जीवन की असारता और क्षणभंगुरता ने भौतिक आकर्षणों के प्रति उदासीन कर दिया । मौत ने उनकी ज़िन्दगी के हर चश्मे को सुखा दिया। वह इन भौतिक सीमाओं से बाहर निकल कर अज्ञात की तलाश में भटकने लगे। नन्दराम की दो बेटियाँ थीं। इनमें एक का विवाह हरद्तूर गाँव में हुआ। उसी के पुत्र मानराम को परमानन्द ने गोद लिया और भौतिक जीवन की गहरी और चौड़ी खाई को पाटने की कोशिश की । नन्दराम ने अपनी पैतृक सम्पत्ति दो बेटियों में

बाँट दी और मानराम को दतक पुत्र के रूप में अपना वारिस बना दिया। मानुराम के तीन पुत्र हुए – रामचन्द्र, गोविन्द राम एवं माहेश्वर नाथ।[2] परिवार का वंश वृक्ष कुछ इस प्रकार विकसित हुआ है –



अब नन्दराम सीर कालिगोंड से मट्टन आ गये और स्थायी रूप से यहीं रहने लगे। गार्हस्थ्य जीवन से अलग होकर वे साधनात्मक जीवन के प्रति आकृष्ट हुए। मट्टन में साधु–सन्तों के निकट बैठकर आध्यात्मिक चर्चायें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और धीरे धीरे नन्दराम 'परमानन्द' में लीन होकर परमानन्द नाम से विख्यात हो गए। इससे पूर्व वे सीर गाँव के देवी मन्दिर में स्थित 'सरस्वती नाग' पर भी साधनारत देखे गये हैं। उन्होंने पटवारी का काम छोड़ दिया और अपना सारा समय अब भगवत– भजन एवं अध्यात्म चिन्तन में ही व्यतीत करते थे।[3]

परमानन्द में सृहन की अद्भुत क्षमता थी। अपनी परम्परा के साथ वे दृढ़तापूर्वक जुड़े थे। इस्लामी चिन्तन की विशिष्ट धाराओं की उन्हें सम्यक् जानकारी थी लेकिन यह चिन्तन उनका प्रेरणास्रोत नहीं बन सका। वे अपनी माटी की ख़ुशबू पर मोहित थे। अपने ऋषि संस्कारों से प्रेरित एबं प्रभावित । एक महान साधक और भक्त होने के साथ–साथ एक जन्मजात सर्जनात्मक कलाकार एवं भक्त थे। उन्होंने अपनी गहरी समझ और चिन्तन के आधार पर जीवन से जुड़ी कई यथार्थपरक स्थितियों/क्षणों/गहनानुभूतियों को मार्मिक रूप से शब्दबद्ध किया है।

मेरा मानना यह है कि कश्मीरी काव्य के इतिहास में 19वीं शताब्दी में विचार प्रधान कविता लिखने का श्रेय परमानन्द को है। इन कविताओं के रसास्वाद के हेतु सन्तुलित, विवेकशील बुद्धि की आवश्यकता है। मर्म तक पहुँचने के पश्चात् ही आनन्द का स्रोत फूट पड़ता है। परमानन्द के मुक्तक काव्य का आकर्षण उसमें निहित विचार, चिन्तन, विवेक एवं रहस्यानुभूति में देखने को मिलता है। यहाँ समर्पण भी है, अटूट विश्वास भी है, श्रद्धा भी है और प्रेम भी। परमानन्द ने एक साथ शिव और श्रीकृष्ण के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि परम्परा से चले आये लोक में प्रचलित शैव सिद्धान्त ने उन्हें अवश्य अपनी ओर आकर्षित

किया था। लेकिन हरि प्रेम की वे उपेक्षा न कर सके, फलतः दोनों में समन्वय स्थापित कर वे सन्तुष्ट दिखाई दिये।

समस्त कश्मीरी भक्ति काव्य की यह विशेषता रही है कि कवियों ने एक साथ सगुण–निर्गुण के प्रति अपना आकर्षण व्यक्त करते हुए शिव–शक्ति के साथ–साथ विष्णु अवतार (श्रीकृष्ण) के प्रति भी, अपना विश्वास व्यक्त किया है। यहाँ न कोई पूर्ण रूप से तुलसी दास है और न कोई पूर्ण रूप से सूरदास। कश्मीर के भक्त कवि दोनों के प्रभाव को ग्रहण करते हुए कहीं शिवोपासना में लीन दिखाई देता है तो कहीं सूफियों के वहदतुलवुजूद / एकेश्वर–वाद में अपनी आस्था व्यक्त करता है। काव्य में इस प्रकार का समन्वय भ्रान्तियों को ही जन्म देता है। मैं इसको कोई स्वस्थ प्रवृत्ति के रूप में नहीं स्वीकारता हूँ। सम्भवतः प्रतिकूल युगीन परिस्थितियों का इसमें कोई हाथ रहा हो।

परमानन्द ने मुक्तक काव्य के अतिरिक्त वर्णनात्मक कथा प्रधान काव्य भी लिखा है। अध्ययन की सुविधा के लिये उनके समस्त उपलब्ध काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:–

1. कथा प्रधान वर्णनात्मक काव्य – 'शिवलग्न'; 'राधास्वयंवर'; 'सुदामाचरित'
2. लम्बी कविताएँ अथवा विचार प्रधान काव्य – 'कर्म भूमिकायि दिज़ि धर्मुक ज़ल'; ' कुल तु छाय'; 'सहज़ व्यच़ार'; 'अमरनाथ यात्रा' 'कृष्ण लीला' आदि
3. गीत एवं मुक्तक काव्य – भजन, लीलाएँ, वच़न एवं अन्य भक्तिपरक रचनाएँ।
4. मिश्रित भाषा में लिखी मिश्रित रचनाएँ।

परमानन्द की रचनाओं के संग्रह कार्य के विषय में निम्नलिखित सूचना उपयोगी सिद्ध हो सकती है ।

1– पण्डित निरंजननाथ रैणा (मरकनटाइल प्रेस, श्रीनगर) ने जनहित के उद्देश्य से 'ज्ञान प्रकाश' शीर्षक से परमानन्द की रचनाओं का एक संग्रह फारसी–लिपि में सन् 1965 ई0 में प्रकाशित कराया। इससे पहले भी वे इस रचना को प्रकाशित कर चुके थे सम्भवतः यह दूसरा या तीसरा संस्करण था। उन्होंने भूमिका में यह स्पष्ट लिख दिया है कि श्री दामूदर जी नेहरू जैसे महापुरुष ने इसके मूल रूप को देखा, सुधारा और पाठ शुद्ध करके वे अब इसको पुनः प्रकाशित कर रहे हैं।

2– जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी ने मार्च सन् 1972 में श्री जियालाल (जयलाल) कौल एवं श्री मोतीलाल साक़ी के सम्पादकत्व में परमानन्द (भाग–1) का प्रकाशन नस्तालीक़ लिपि में किया। पुस्तक के आरम्भ में 'ज़ान' शीर्षक के अन्तर्गत परमानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है लेकिन यह 'ज़ान' अपने आप में अपूर्ण है। कई प्रश्न अनुत्तरित रह गये हैं और सूत्र बीच में ही क्षीण पड़ गये हैं अथवा खो गये हैं। परमानन्द की चालीस मुक्तक रचनाओं के साथ साथ इसमें 'श्रीकृष्ण अवतार लीला और सुदामाचरित' तथा 'शिवलग्न' भी संगृहीत है। काव्य–संकलन की दृष्टि से यद्यपि यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है तथापि इसमें पाठ–शुद्धि पर कोई विचार नहीं किया गया है।

3–'परमानन्द' भाग–2 प्रोफेसर श्रीकंठ तोषखानी एवं मोतीलाल साक़ी के सम्पादकत्व में अकादमी की ओर से सन् 1974 ई0 में तस्तालीक़ लिपि में प्रकाशित हुआ। इसमें विद्वान सम्पादक बन्धुओं ने सार गर्भित अग्रलेख के द्वारा परमानन्द के रचना संसार पर प्रकाश डाला है। इसमें वर्णनात्मक कथा–काव्य, 'राधास्वयंवर' कुछ चर्चित लीलाएँ एवं तीन वचन गीत संगृहीत हैं।

4– स्वर्गीय मास्टर ज़िन्द कौल ने परमानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए अंग्रेज़ी भाषा में उनकी चयनित रचनाओं का भाषानुवाद तीन भागों में प्रकाशित कराया। मास्टर जी

ने परमानन्द को उन पाठकों के समीप पहुँचाया जिन्हें कश्मरी भाषा की जानकारी नहीं है।

5– इधर सन् 1960 ई0 में प्रोफ़ेसर श्रीकंठ तोषखानी द्वारा उर्दू भाषा में लिखित 95 पृष्ठों की एक पुस्तक 'परमानन्द' शीर्षक से प्रकाशित हुई। पुस्तक में प्रोफ़ेसर साहब ने परमानन्द की कुछ चयनित रचनाओं का उर्दू भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया है और साथ ही मूल पाठ भी दिया है। आरम्भ में सोलह पृष्ठों की भूमिका दी गई है जो उपयोगी भी है और ज्ञानवर्द्धक भी।

6– सन् 1981 ई0 में श्री पृथ्वीनाथ 'पुष्प' ने 'परमानन्द–प्रवाह' शीर्षक से हिन्दी भाषा में 159 पृष्ठों की एक पुस्तक लिखी जिसे जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी ने प्रकाशित किया। 'पुष्प' जी ने 12 पृष्ठों की आरम्भ में भूमिका लिखी है और तत्पश्चात् परमानन्द की श्रेष्ठ रचनाओं के प्रमुख भागों का हिन्दी में पद्यानुवाद प्रस्तुक किया है। 'पुष्प' जी घाटी के जाने माने लेखक और विद्वान थे। उनका यह प्रयास सन्तोषजनक है।

7– श्री पृथ्वी नाथ 'मधुप' ने 'कवि–श्रीमाला : परमानन्द' शीर्षक से परमानन्द की कुछ कविताओं का पद्यानुवाद तैयार कर पुस्तकाकार में प्रकाशित करवाया। इस पुस्तक का उल्लेख साक़ी साहब ने सन् 1972 में परमानन्द भाग–1 की भूमिका में किया है।

8– यहाँ इस बात की जानकारी देना आवश्यक है कि स्वर्गीय अब्दुल अहद 'आज़ाद' ने 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' शीर्षक पुस्तक के तृतीय भाग में 46 पृष्ठों पर आधिकारिक रूप से परमानन्द की रचनात्मक प्रतिभा पर अपने सन्तुलित विचार व्यक्त किये हैं। पुस्तक का यह तृतीय भाग सन् 1963 ई0 में प्रकाशित हुआ है। 'आज़ाद' निस्सन्देह तमाम संकीर्णताओं से आज़ाद थे। उन्होंने परमानन्द की रचनाओं का गहन अध्ययन करके प्रत्येक पहलू पर विचार किया है। श्रीमद्भगवद्गीता का परमानन्द पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा है इस तथ्य को स्वर्गीय आज़ाद ने

भगवद्गीता के श्लोकों के साथ परमानन्द के सम्बद्ध (Relevant) पद्यांशों का तुलनात्मक अध्ययन करके उजागर किया है। आज़ाद श्रीमद्भगवद्गीता के कथ्य एवं तथ्य से पूर्ण परिचित थे।विशिष्ट अध्ययन के आधार पर श्रीमद्भगवद् गीता के श्लोकों को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने सब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया । इसके अतिरिक्त अर्थ–गाम्भीर्य फसाहत (सहज शब्दावली), 'सलासत' (सरल–रवानी), नैतिक शिक्षा, आत्म ज्ञान, प्रकृति चित्रण, वातावरण निर्माण, सांस्कृतिक शब्दावली, भाषा प्रवाह, उपमायें एवं रूपक, महावरे आदि उपशीर्षकों के अन्तर्गत स्वर्गीय अब्दुल अहद आज़ाद ने परमानन्द के रचनात्मक कौशल का सन्तुलित विश्लेषण प्रस्तुत किया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज़ाद का देहान्त सन् 1948 ई0 (4 अप्रेल 1948 ई0) में हुआ और उन्होंने यह काम वर्षों पहले किया था तब जब न 'कल्चाल अकादमी' का वुजूद था और न ढोल पीटने वाले लेखकों और आलोचकों का । यह वह युग है जब पारिश्रमिक पाकर या उस के लोभ में रचनाएँ नहीं लिखी जाती थीं। आज़ाद ने अपने आप को कश्मीरी साहित्य के प्रति पूर्ण रूपेण समर्पित किया था। 20–25 रूपये मासिक वेतन पाने वाले एक साधारण स्कूल मास्टर निस्वार्थ भाव से साधनात्मक जीवन जी कर हमें अपने सांस्कृतिक विरसे के प्रति सचेत कर रहा है।

9– डॉ0 शशिशेखर तोषखानी ने 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक़ में 'लीला काव्य' उपशीर्षक के अन्तर्गत 21 पृष्ठों पर परमानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सम्यक् प्रकाश डाला है। यह पुस्तक भी जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा सन् 1985 ई0 में प्रकाशित हुई हैं डॉ0 शेखर ने इसे हिन्दी भाषा में लिखा है। एक आलोचक की पैनी दृष्टि से परमानन्द की रचनाओं पर अलग अलग उपशीर्षकों के अन्तर्गत विचार किया गया है। यह आवश्यक नही कि प्रत्येक लेखक के हर कथन से हम सहमत हों लेकिन यह आवश्यक है कि पाठक उनके विचारों और निष्कर्षों से

अवगत हों तभी तो अध्ययनोपरान्त कोई निष्कर्ष दिया जा सकता है। नई नई सम्भावनाएँ आलाचकों के द्वारा ही तलाशी जाती हैं। वे एक सचेत पाठक के लिये प्रेरणा स्रोत बनकर नवीन दिशाओं में आगे बढ़ने के लिये उत्साहित करते हैं।

मुझे बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि आज परमानन्द की रचनाओं के संग्रह कहीं उपलब्ध नहीं हैं। भले ही पुरानी प्रतियाँ कहीं–कहीं पुस्तकालयों में मौजूद हों। 'ज्ञान प्रकाश' तथा 'परमानन्द' भाग–1,2 (कल्चरल अकादमी), देवनागरी लिपि में उपलब्ध नहीं हैं। मास्टर ज़िन्द कौल की परमानन्द पर अंग्रेज़ी भाषा में लिखी पुस्तक, जो तीन भागों में प्रकाशित हुई, आज कहीं उपलब्ध नहीं । यह हमारा दुर्भाग्य है कि आज परमानन्द को जन–सामान्य पढ़ नहीं पा रहा है। पिछले चालीस वर्षों में वितस्ता नदी में काफ़ी पानी बह चुका है। अनुसन्धान की नई नई सम्भावनाएँ विकसित हो चुकी हैं। स्वर्गीय तोषख़ानी और स्वर्गीय 'पुष्प' ने जो कुछ लिखा है वह ग्राह्य तो है लेकिन उससे आगे बढ़ने की आवश्यकता है। यह वस्तुतः समय की मांग है और जो समय के साथ चलने का सामर्थ्य नहीं रखता उसे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। परमानन्द हमारे सांस्कृतिक विरसे की पहचान हैं, कश्मीरियत को उजागर करने वाला एक सशक्त हस्ताक्षर हैं, आख़िर उनके साथ यह अन्याय क्यों हो रहा है ?

*　　　*　　　*

' कृष्णावतार लीला एवं सुदामा चरित '

कथात्मक काव्य के अन्तर्गत प्रस्तुत रचना परमानन्द की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इस रचना को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया गया है। पूर्वार्द्ध में कृष्णावतार कथा वर्णित है और उत्तरार्द्ध में कृष्ण सखा ब्राह्मण सुदामा के छल कपटमय व्यवहार को लेकर जीव–ब्रह्म के आपसी सम्बन्धों पर विचार किया गया है। दरिद्र

केवल वह नहीं है जिस के पास धन सम्पत्ति नहीं, दरिद्र वास्तव में वह है जो सदा स्वार्थ की श्रृंखलाओं में कैद होकर तथा कुँए का मेंढक बनकर अपने क्षणिक, अल्प सुख पर इतरा रहा हो ।

पूर्वाद्ध में कृष्ण लीला से सम्बन्धित अद्भुत छवि चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। गोपाल ने समस्त गोकुल को अपनी मोहिनी छवि से मोह लिया है। जसोदा का नन्दन तो सम्पूर्ण गोकुल वासियों को अपनी लीलाओं से आनन्दित कर रहा है। वात्सल्य वर्णन का इतना सुखद, मनोरम और चित्ताकर्षक चित्रांकन देखते ही बनता है। यह सूरदास द्वारा लिखित बाल–वर्णन की मधुर स्मृति दिलाता है। परमानन्द ने इन छवि चित्रों को कश्मीरी–भाषा में प्रस्तुत करके 'प्रेमानुगा' भक्ति को जनमानस में प्रवाहित किया है। घुटनों चलना, माखन चोरी, ऊखल बन्धन, असुर दमन, बाल सखाओं के साथ यमुना के किनारे खेलना, ग्वाल बालों के साथ वन–विहार, राधा मिलन, आकर्षण के डोर में बन्ध जाना, अलौकिक प्रेम बन्धन, चीर–हरण, राधाकृष्ण संवाद, इन्द्र के अहंकार का दमन (गोवर्धन धारण) तथा ब्रह्मा जी की ना समझी आदि कई पौराणिक एवं अर्द्ध पौराणिक विषयों को लेकर परमानन्द ने अपनी मौलिक उद्भवनाओं के द्वारा कश्मीरी लीला काव्य के क्षेत्र में चिर स्मरणीय छवि चित्र उत्कीर्ण किये हैं।

परमानन्द एक कृष्ण भक्त थे अतः एक भक्त कवि कृष्ण प्रेम में उन्मत्त अपना सब कुछ इष्ट के चरणों में समर्पित करके ईशानुग्रह की प्राप्ति हेतु प्रतीक्षरत दिखाई देता है। अपने मानस में पल्लवित प्रेम भावना को पुष्ट करते हुए ईश–लीला में लय होकर आत्मविस्मृति क अवस्था में अपने अस्तित्व के एहसास को भुलाकर तथा अद्वैत–चिन्तन से प्रेरित होकर अमृत कणों से मानस को सिक्त कर देता है। छलिया तो लीलामग्न हैं और भक्त परमानन्द प्रवाहित प्रेम स्रोतस्विनी में डुबकी लगाकर परमानन्द से तृप्त हो जाता है।

यहाँ केवल दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :–

अ) द्वदु हाँच़ लॉजनय यशोदा माजे,
ज़ोनुन न आमुत छु ज़गि हुन्द राजे
शोभ मोख होवथस अदु त्रोभवनय,
जय–जय–जय देवकी नन्दनय
ब्वदु ब्रोर द्वदु च़ूर द्राव खोखजे,
गूरि बायि चोपॉर लारुनि लजे
म्यॉति म्यॉति म्यॉति क्या छु बानु फुटरनय
जय–जय–जय देवकी नन्दनय
यशोदायि दोप छुम दशरावनय,
लूकु बायन निश मन्दछावनय
यडबॅडसुय छनु यडयिवनय,
जय–जय–जय देवकी नन्दनय

– *'परमानन्द' भाग–1, पृ0 130*

आ) गूरय शुरय ह्यथ द्राव वॉच़ रछने,
च़ूरि आव ब्रह्मा भाव वुछने
वॉच़ निथ छ्यप ह्यथ रूद पथवनय,
जय–जय–जय देवकी नन्दनय
कॉरथस चित्रकार शुर्य किहो वॉछी,
ब्योन ब्योन रंगु रंगु तिथ यिथ गछ़ी
गॅच़ चानि ब्रह्मा यॅच़ मन्दछनय,
जय–जय–जय देवकी नन्दनय
जगु गोसु यन्दरराज़ु लोग वरशनय,
सहलाब फिरहे सॉन्य वोगनय
छतु कनु अथ ह्यथ चु गोवर्धनय,
जय–जय–जय देवकी नन्दनय

– *'परमानन्द' भाग–1 पृ0 132*

प्रस्तुत वर्णनात्मक कविता के उत्तरार्द्ध में सुदामा–कृष्ण के परस्पर रिश्ते को लेकर लिखी गई एक प्रतीकात्मक काव्य–कथा है। यह वस्तुतः भौतिक बन्धनों में घिरे हुए जीव और अलौकिक आनन्द से विभूषित परम ब्रह्म के आपसी रिश्ते से जुड़ी कथा है। सुदामा कृष्ण के मित्र हैं, साथी–संगी–सहपाठी, प्रिय बन्धु,, एक ही गुरु से दीक्षित । गुरुकुल में सुदामा का स्वार्थमय व्यवहार और तत्पश्चात् गार्हस्थ्य जीवन में दारिद्र्य की पीड़ा। जीव अपने स्वभाव एवं स्वार्थवश केवल अपने विषय में सोचता है उसे लोक की चिन्ता नहीं लेकिन वह यह नहीं जानता कि ब्रह्म वस्तुतः लोक में ही विद्यमान रह कर लीला मग्न दिखाई देता है।

जीव को जब अपनी क्षुद्रता का एहसास होता है, प्रायश्चित की अग्नि में जल कर जब उसका अस्तित्व विशुद्ध हो जाता है तो तुरन्त भगवान के अनुग्रह से उसके जीवन में बसन्त खिल उठता है। प्रकृति की इस मधु मिश्रित मुसकान का अनुभव विरले जन ही कर सकते हैं। सुदामा की पत्नी सुशीला उसे पुनः मित्रद्वार पर दस्तक देने का परामर्श देती है और घर में कुछ भी न होने के कारण 'तोंन्य फोल' (चावल के एकत्रित अत्यन्त बारीक–कण) ले कर वह द्वारिकाधीश के द्वार पर खड़ा हो जाता है। श्रीकृष्ण सूचना मिलते ही लपक कर मुख्य द्वार पर पहुँचते हैं और अपने बाल–सखा का यथोचित स्वागत करते हैं। कई दिन द्वारिका में रहकर वह जब अपने घर वापस लौटता है तो वहाँ अपनी पर्ण–कुटिया को स्वर्ण–कुटिया में परिवर्तित पाता है – यही तो ईशानुग्रह का प्रसाद है, जिसे मिला उसका जीवन सफल हो जाता है और आवास वैकंठ में बदल जाता है। वस्तुतः सब कुछ निर्भर करता है जीव पर। उसके सोच पर परिपक्वता इष्ट को पहचानने में सहायक सिद्ध होती है। भौतिक जीवन के बन्धन, अहंकार पूर्ण द्वैत का एहसास, प्रताड़ित जीवन की विवशता उवं अहंकार का विसर्जन और अन्त में पूर्ण समर्पण (Total surrender) ही सुदामा को ईशानुग्रह एवं ईश कृपा का भागी बना देता है।

इस लम्बी कथात्मक कविता के उत्तरार्द्ध से दो उदाहरण द्रष्टव्य है :–

अ) सोदाम जू ओस यार भगवानस
बालु भाव क्या तु लोकचार भगवानस
कुनुई पानु वॉन्य नु ज़ि ब्यनई
जय–जय–जय देवकी नन्दनय
सिस्य फोल चूरि चूरि ख्यव सोदामन
पूस्योस न ज़ि लोग संसॉर पामन
अथ छोन सु भगवान दूरि वुछनय,
जय–जय–जय देवकी नन्दनय

— 'परमानन्द' भाग–1, पृ0 143.144

आ) तोरु द्राव भगवान स्वदर्शनय,
योरु सोदाम जीव गोस अरपनय
पानवान्य वुछने लजाय स्वप्नय,
जय–जय–जय देवकी नन्दनय
कोछि क्यथ ह्यथ न्यूख आन्दस्युम गरै,
खोर ह्यथ रखमन तु अथु ईशरै
गिन्दने लॉग तस बिशत् ब्रास्यनय, ,
जय–जय–जय देवकी नन्दनय
सोदाम लोबमुत कॅहिताम पाठी,
मॅशरिथ कृष्ण जू रुक्षमन तु टॉठी
वाट आसि आसान युथुई टाठ्यनय,
जय–जय–जय देवकी नन्दनय

— 'परमानन्द' भाग–1, पृ0 156.157

*　　　　*　　　　*

'शिवलग्न'

शिव–शक्ति उपासक कश्मीर वासियों के लिये शिव के विवाह की कथा उनकी आस्था और विश्वास के अनुरूप लोक–मानस को छूती नज़र आती है। इसे निस्सन्देह एक खण्ड काव्य के रूप में लिया जा सकता है जिसमें दक्ष के अहं से कुपित सती आत्मदाह के बाद हिमालय के घर में जल्म लेकर पुनः शिव प्राप्ति के हेतु तपस्या रत हो जाती है और वरदान पाकर उसके साथ विवाह बन्धन में बन्ध जाती है।

एक कश्मीरी पण्डित परिवार में पुत्री का विवाह विशिष्ट रीति–रिवाज एवं परम्पराओं के पालन के साथ होता है। ब्राह्मण को विवाह प्रस्ताव लेकर शिवजी के पास भेजा जाता है। गुप्त रूप से पार्वती शिवजी को अपने पूर्व–जन्म का समाचार देकर इस जन्म में वरण करने के हेतु आमंत्रित करती है। ब्राह्मण जिस रूप में शिवजी को देखते हैं वह थर थर काँप उठते हैं। ब्राह्मण और शिवजी के पारस्परिक वार्तालाप में शिवजी कुपित हो उठते हैं। वे शिवजी (आशुतोष) की आराधना करते हैं। शिवजी प्रसन्न होकर उसके झोले में कोयले डाल देते हैं । अज्ञानी ब्राह्मण मार्ग में झोले में से कोयले फेंक देता है और घर पहुँच कर जब झोले में कुछ बचे हुए स्वर्ण कण पाता है तो अपनी मूर्खता पर अफ़सोस करता है और इसके साथ ही उसे विश्वास होता है कि शिवजी मूलतः साक्षात् भगवद् स्वरूप हैं। विवाह निश्चित हो जाता है तब नारद जी उपस्थित होकर शंकाओं का समाधान करते हुए पार्वती के पूर्व जन्म की कथा हिमालय और मीनावती को सुनाते हैं ।

विवाह की तैयारियाँ होने लगी। निश्चित दिन दूल्हा के रूप में शिवजी पधारे परन्तु देखकर सब काँप उठे । भस्माभूत वृद्ध दूल्हा के रूप में शिवजी उपस्थित होकर सब को क्षुब्ध कर देते हैं। बारात में दो ही बाराती थे – कुमार और गणेश जिन्होंने समस्त भोज्य पदार्थों को देखते ही देखते खा कर समाप्त कर दिया। पार्वती के समस्त परिवार जन शिव नाथ की अस्तुति (स्तुति) करते हैं और

आस्था पूर्वक श्रद्धा–सुमन अर्पित करते हुए दयानुग्रह के हेतु कर बद्ध याचना करत हैं। तत्पश्चात् शिवजी प्रसन्न मुद्रा में अद्भुत रूप धारण कर बारातियों के साथ शोभायमान दिखाई देते हैं। सर्वत्र प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। विधिवत द्वार पूजा होती है तथा भोजन करने के पश्चात् रात्रि में लग्न सम्पन्न होता है। समस्त देवता–गण इस विवाह में सम्मिलित हो जाते हैं। ब्राह्मण देव वेद–पाठ के साथ उत्सव में शोभावृद्धि करते हैं।

विवाह सम्पन्न होने के बाद प्रातः विदाई हुई और शिवजी पार्वती को लेकर कैलास पर्वत की ओर चल पड़े।

'शिवलग्न' लोक विश्वास के आधार पर रचित एक अन्योक्ति प्रधान काव्य है जिसमें मस्नवी की तरह एक ही छन्द के आधार पर कथा के तारतम्य में शिव उपासकों के लोक विश्वासनुसार शिव–पार्वती के पुनः विवाह की कथा प्रत्यक्ष रूप में और जीव के आन्तरिक एहसास (अहं छोड़ कर ज्ञानानुभूति) की कथा अप्रत्यक्ष रूप में वर्णित है। शिव और शक्ति के सहयोग से ही सृष्टि का विकास सम्भव है । शिव शक्ति के बिना शव है और शक्ति ही उसे विकास के हेतु प्रेरित करती है। शक्ति प्रेरणा है और शिव उसका प्रकाश, शिव शक्ति के इस अद्भुत मिलन को लोक मानस की धरातल पर प्रस्तुत करते हुए कवि ज्ञान के विवेक को आनन्द की तुला पर तौल कर शिव तत्त्व, शक्ति तत्त्व एवं नर तत्त्व (त्रिक्) की महत्ता को सिद्ध करते हैं। रचना में कथा का आकर्षण है, सृजन की अनुपम छटा, अन्योक्ति की गरिमा, संस्कृति बोध एवं बीच–बीच में लीलाओं एवं भक्ति परक गीतों के रस कणों की फुहार । यहाँ केवल तीन उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं :–

अ) जटि गंग यसतु वासुकनाग, सती हँज़ पुचि़ महावॉराग
यूगीश्वर त्रु ओम् भूर्भुवः, सती च्यथ आनन्द विज्ञान रवुह
तथ दक्ष्यन दीशीस वुत्रबुन्युल, वातनु रोस्तुई त्रासन तुल
गटि वॉन्य ज़ि कति प्ययि सिरियि प्रवा,
सत च्यथ आनन्द विज्ञान रवुह

— 'परमानन्द' — भाग—1, पृ0 202

आ) दर्शन भयानक हावुवुन, न्यथनोर्न क़बीलु मन्द छावुवुन
वोल्मुत सु कपाल मालवह, सत च़्यथ आनन्द विज्ञान रवुह
सर्पन हुन्द छुस योनि नॉल्य वारुज़ोनमुत चॉन्य मुाजिमॉल्य
वॉसि किन कॉसि कूँस मा सु भवः
सत च़्यथ आनन्द विज्ञान रवुह।।
— 'परमानन्द' भाग–1 पृ0–207

इ) वोत्रस दीशस चु आशु छुई, सारिनुय हुन्द सु यूगि कुनुई
तथ दीशस कुन चु त्राव रवुह सत च़्यथ आनन्द विज्ञान रवुह
मायि चानि वोनमय पोज़ चु बोज़
तोरकुन लारुवुन यंति मु रोज़
यति कॉलास पर्बत तु शीवह सत् च़्यथ आनन्द विज्ञान् रवुह
तति यी डेशख तु ती छु सार तॉतथई प्रार ओरु योर मु लार
तति छुय मोख्तु हारन लवह
सत च़्यथ आनन्द विज्ञान रवुह
— 'परमानन्द' भाग–1 पृ0–214

'शिवलग्न' को पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है कि परमानन्द शिव के भी उतने ही अनन्य उपासक थे जितना वे श्रीकृष्ण के थे। वस्तुतः यह समन्वयवादी दृष्टिकोण परमानन्द के उस चिन्तन की ओर संकेत करता है जहाँ पहुँच कर समस्त तत्त्व एक ही परम तत्त्व में लय हो जाते हैं। सब कुछ सम हो जाता है। यह अद्वैत चिन्तन की आरे संकेत भी है और उस काल–विशेष का प्रभाव भी है जिसमें परमानन्द अपनी जीवन–श्वासें ले रहे थे। शिव और शक्ति के विवाह की कथा को आधार बनाकर वस्तुतः सृष्टि विकास के मूल कारणों को दर्शाने का प्रयास किया गया। पुरुष और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्ध की ओर भी प्रस्तुत रचना में संकेत किया गया है ।

* * *

' राधास्वयंवर '

'राधास्वयंवर' परमानन्द की एक कथा प्रधान वर्णनात्मक अन्योक्ति आधृत काव्य रचना है। इस रचना को यदि एक खण्ड काव्य कहा जाये तो अनुचित नहीं होगा।

कृति का श्रीगणेश वसुदेव और देवकी द्वारा भगवान को सन्तान रूप मे पाने की इच्छा के साथ 'च्यथ विमर्श दीप्तिमान भगवानो' (हे चित्त विमर्श दीप्तिमान भगवान!) के साथ होता है । श्रीकृष्ण जन्म गोकुल के लिये वरदान सिद्ध हुआ। भगवान शंकर भी श्रीकृष्ण दर्शन हेतु साधु वेश में गोकुल पहुँचे। गोकुल में श्रीकृष्ण की आनन्दमय बाल लीलाएं और किशोरावस्था में गोपियों के साथ आकर्षण के डोर में बन्ध कर चीर–हरण प्रसंग, राधा सम्पर्क, आकर्षण और परस्पर प्रेम तथा राधा द्वारा सखियों के सम्मुख अपनी विवशता भरी व्यथा–कथा को सुनाना तथा गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण के सम्मुख विनीत भाव से प्रार्थना करना, वन गमन, गोचारण, राधा कृष्ण केलि प्रसंग, गोपियों द्वारा कृष्ण का गुणगान, अद्भुत रास लीला प्रसंग तथा गोपियों को कृष्णमय होकर आनन्दानुभूति से अधीर हो उठना, गर्ग जी का गोकुल पहुँचना, जसोदा–कृष्ण संवाद, मोहिनी रूप, अधीरावस्था में राधा द्वारा कृष्ण के लिये पुकार, कृष्ण द्वारा राधा के सम्मुख वास्तविकता को प्रकट करना, नारद मुनि का वृषभानु के घर पहुँचना और विवाह की तैयारी, कंसासुर वध, वसुदेव का मुक्ति प्रसंग, कृष्ण द्वारा उग्रसेन को राजा बनाना तथा माता–पिता को साथ लेकर घर पहुँचना, विवाह की तैयारियाँ करना, ब्रजमण्डल में श्याम सुन्दर का दूलहारूप में प्रवेश, गोपियों द्वारा विवाह गीत गाना। सम्पता एवं वृषभानु द्वारा भगवान का गुण गायन, भगवान द्वारा नारद जी और सम्पता (राधा की माँ) का उपदेश देना, राधा के मायिके वालों द्वारा विवाह–गीत गायन तथा विदाई, कृष्ण का राधा को साथ लेकर वृन्दावन पहुँचना, भगवान द्वारा द्वारिका निर्माण और शहर को बसाने का क्रम, कुरुक्षेत्र में राधिका श्री कृष्ण

मिलन तथा रुक्मिणि का हर्षोल्लास, रुक्मिणी द्वारा कृष्ण के गुणों का भखान श्री हरि के विभिन्न रूपों के उल्लेख के साथ–साथ कथा–वर्णन समाप्त हो जाता है। कथा केक बीच–बीच में विभिन्न लीलाओं और भक्तिगीतों के समावेश से वर्णनात्मक कथा प्रसंग की ऊब और थकान मिट जाती है।

'राधास्वयंवर' में कृष्ण काव्य से जुड़े परपराग्त कथा तत्त्वों एवं घटनाओं का उल्लेख किया गया है। मूमलतः परमानन्द ईशानुग्रह के हेतु पूर्ण समर्पण के साथ अपना सर्वस्व कृष्ण चरणों में अर्पण कर देता है।

डॉ0 शशिशेखर तोषख़ानी के शब्दा में – " परमानन्द ने राधा और कृष्ण के बालपन से ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित और प्रीति में आबद्ध दिखा कर अनेक सुकुमार स्थितियों की सृष्टि की है। ...... दोनों का मिलन होता है और अनुराग की अंकुर फूटता है। .... राधा और कृष्ण के विवाह के वर्णन में प्रकृति और पुरुष के चिरन्तन मिलन का विराट बिम्ब झलक उठा है ।"[4]

डॉ0 शेखर के इस कथन का अन्तिम वाक्य महत्त्वपूर्ण है जो मेरे इस विश्वास को शक्ति प्रदान करता है कि परमानन्द के राधास्वयंवर में प्रत्यक्ष अर्थ बोध के साथ–साथ परोक्ष अर्थ तत्त्व को ढूँढना और स्थिर करना नितान्तावश्यक है।

प्रस्तुत कथा–काव्य में ' मोहिनी रूप प्रसंग ' परमानन्द के शिष्य लक्ष्मण जू रैणा 'बुलबुल' ने लिखा है। यह वस्तुतः गोप गोपियों के साथ विहार करते हुए कृष्ण का अकस्मात् अदृश्य होना और राधा का उनकी अनुपस्थिति में फूट फूट कर रोने और विलाप करने के प्रसंग से जुडा है। यह वस्तुतः कृष्ण लीला का ही एक रूप है। राधा को इस बात का गर्व था कि वह कृष्ण प्रिया है और उनके बिना श्रीकृष्ण एक क्षण के लिये भी रह नहीं सकते। प्रस्तुत लीला से राधा को अपनी भूल का एहसास होता है और उसका मन विशुद्ध होकर निरभिमान रूप से प्रकृतावस्था पर लौट आता है।

'राधास्वयंवर' कथा काव्य का सम्पादन करते समय सम्पादक द्वय (प्रोफ़ेसर तोषख़ानी, मोतीलाल साक़ी) ने मोहिनी रूप की पाद टिप्पणी में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि यहाँ से परमानन्द के शिष्य पण्डित लक्ष्मण जू रैणा 'बुलबुल' ने इस रचना को आगे बढ़ाया है।

इतना ही नहीं प्रस्तुत रचना में एक लोकप्रिय वच़नगीत –

'वॅथवी सखरिवि सखरिवि वन
कृष्ण दर्शुन करिवि लोलो ।'

–'परमानन्द' भाग–2, (राधा स्वयंवर' पृ0–93)

भी लक्ष्मण जू रैणा ने ही लिखा है। इस वच़न–गीत का अन्तिम बन्द देखिये :–

'नन्दुलाल धरि गोवर्धन
गोकुलुक्यन करि प्रसन्न
परम् आनन्द प्रावि लॉखमन
कृष्ण दर्शुन कॅरिवि लो लो ।'

– 'परमानन्द' भाग–2, (राधा स्वयंवर' पृ0 97)

गुरु–शिष्य परम्परा के अन्तर्गत शिष्य के रचना को गुरु द्वारा स्वीकृति प्रदान करते हुए अपने संग्रह में स्थान देना शिष्य के लिये गौरव की बात समझी जाती थी। इस विषय में पहले ही विस्तार के साथ लिख चुका हूँ ।

'राधास्वयंवर' काव्य में परमानन्द ने राधा के व्यक्तित्व को कृष्ण प्रेम से महिमामंडित किया है। वह अपने प्रिय पर मोहित है और लौकिक बन्धनों की सीमाओं को लांघ कर अध्यात्म और अलौकिक धरातल पर केलि क्रीडा में रत रहने के हेतु अधीर दिखाई देती है। वह समर्पित है अपने प्रियतम के प्रति और अपना सर्वस्व दाँव पर लगाकर कृष्णमय होने के हेतु कृत संकल्प दिखाई देती है। उसके व्यक्तित्व में रूपाकर्षण का माधुर्य भी है और तड़पा देने वाली चितवनों (दृष्टि कटाक्ष) की अकुलाहट भी है। भौतिक जीवन में भी

प्रेम की महत्ता स्वयं सिद्ध है। उसकी देहकान्ति निस्सन्देह चितचोर को अधीर बना देती है। यह स्वाभाविक है कि प्रत्येक सुन्दर वस्तु हमें अच्छी लगती है और हमारे ध्यानाकर्षण का केन्द्र बन जाती है। लेकिन यह सब होते हुए भी 'राधास्वयंवर' में उसका चरित्र पाठक को क्षणिक भौतिक आकर्षणों की भावभूमि से ऊपर उठाकर रास के आनन्दलोक की प्रतीति कराता हुआ शाश्वत आनन्द प्राप्ति के हेतु प्रेरित करता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उदात्त भाव-भूमि पर पहुँचा देता है। उसकी एक एक मुसकान तड़पा देती है ज़रूर लेकिन साथ ही उसके हृदय की शुद्धता अर्थात् आन्तरिक सौन्दर्य की मनोहरता से मोहित भी कर देती है। यहाँ भीतर प्रवेश कर संयमित दृष्टि से शाश्वत सौन्दर्य को तलाशने की आवश्यकता है क्योंकि अन्त में सब कुछ कृष्णमय ही तो हो जाता है। राधा भी कृष्ण में लीन होकर कृष्ण का ही पर्याय बन जाती है। डॉ0 शशि शेखर तोषख़ानी ने 'प्रेम का रसात्मक दर्शन' उपशीर्षक के अन्तर्गत राधा के चारित्रिक गुणों पर प्रकाश डालते हुए लोकानन्द और परमानन्द के मध्य स्पष्ट रेखा खींच दी है।[5]

'राधास्वयंवर' को परमानन्द ने 'वचनगीत' शैली में लिखा है। हर तीन पंक्तियों के बाद प्रथम पंक्ति को टेक (गीत का स्थायी पद) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह पंक्ति है –

च्यथ विमर्श दीप्तिमान भगवानो

(चित्त विमर्श दीप्तिमान भगवान !)

यह पंक्ति कृष्ण भक्तों में पर्यात चर्चित रही है। इसमें भगवान (षड् गुणों युक्त नारायण) के चारित्रिक लक्षणों अथवा विशेषणों की पुनः स्मृति बार-बार की जाती है। केवल इस पंक्ति पर ही यदि ध्यान दिया जाये तो 'राधास्वयंवर' लिखने के पीछे परमानन्द का जो उद्देश्य रहा है वह स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

यहाँ इस बात पर भी विचार करना आवश्यक है कि परमानन्द स्वयं संगीत के प्रति मोहित थे। मैंने अपने बुज़ुर्गों से सुना है कि

वे प्रायः भजन कीर्तन में एक वाद्ययन्त्र (मृदंग) बजाते थे और भावावेश में आकर नृत्य मुद्राओं में मग्न हो जाते थे ।[6]

*　　　　*　　　　*

' प्रेमानुगा भक्ति '

परमानन्द एक कृष्णभक्त कवि थे और प्रेमानुगा भक्ति के प्रति निष्ठावान समर्पित कृष्ण प्रेमी । यहाँ प्रेम का महत्त्व सर्वोपरि है। भक्त निछावर है अपने इष्ट पर और सख्य—भाव से वह अपने हृदय के आकर्षण को कण—कण छान कर विशुद्ध बना देता है । 'लोल' (प्रेमाकर्षण) के महत्त्व को दर्शाते हुए परमानन्द 'राधास्वयंवर' में लिखते हैं :—

केंह छुनु लोलु रोस आसवुन लोलुई छु सॉर व्याद कासवुन
लोलुकि गाश गट्ट कासुवह—सतचित आनन्द विज्ञान रवुह
लोलु बोज़ व्वलु वन्य बोवनय – लोलुई छु चोदह भवनय
शोलवुन छु सोरुई लोलवुह – सतचित आनन्द विज्ञान खुह
लोलु सुत्य वौलसिथ आयि ज़ग—लोलु
सुत्य छुम बरिथ पय तु रग
लोलु परमु आनन्द प्राववुह – सतचित आनन्द विज्ञान खुह ।

– परमानन्द – भाग–1 पृ0 248

'लोल' (प्रेम) और लोक संगीत परमानन्द के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। इस लोल का महत्त्व वही जान सकते हैं जिन्होंने इष्ट प्रेम में अपना सर्वस्व लुटा कर मीरा की तरह विषपान के हेतु अपने आपको तैयार किया हो। यह हर एक के बस की बात नही है। विरले जनही इस बन्धनको निबाहने का सामर्थ्य जुटा सकते हैं। यह बन्धन दिखने में तो बड़ा प्याराऔर आकर्षक है परन्तु निबाहने में उतना ही दुशवार और कुलिश कठोर।

संगीत का माधुर्य प्रेमाभिव्यक्ति को न केवल मर्मस्पर्शी बना देता है अपितु इसके श्रवण मात्र से ही हृदय–तार बज उठते हैं और याराना दृढ़ से दृढ़तर रूप धारण करता है।[1] साधक अपने मानस की परिपक्वता के हेतु पूर्ण रूपेण समर्पित होकर इष्ट के साथ अपना भावात्मक सम्बन्ध जोड देता है।[7]

प्रसिद्ध कश्मीरी कृष्ण भक्त कवि पण्डित कृष्ण जू राज़दान (1850–1926 ई0) के विषय में यह कहा जाता हे कि वे स्वयं लीला मग्न होकर मधुर कंठ से गाते थे और कभी कभी अकस्मात् नृत्य करने लगते थे। यही वास्तव में आनन्द की अवस्था है जहाँ पहुँच कर दुई के बन्धन टूट जाते हैं और प्रिय से एक रूप होकर हृदय में अनलहक़ (अहं ब्रह्मास्मि) नाद स्वतः बज उठता है और आँखें यार से बतियाने के लिये अधीर हो उठती हैं। 'आँखें' शब्द का प्रयोग सोच समझ कर ही किया गया है। परमानन्द के यहाँ रोज़ सत्संग के लिये अथवा सामूहिक गायन या प्रार्थना के लिय उनके शिष्य और अन्य चाहने वाले एकत्र हो ज़ाते थे और कृष्ण लीलाओं का गायन सामूहिक रूप से होता था। परमानन्द स्वयं इन सभाओं का नेतृत्व करते थे और इस प्रकार वातावरण कृष्णमय बनाने में उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती ।

* * *

परमानन्द ने चालीस से अधिक वचनगीत, भक्ति–गीत, लीलायें, विचार गीत एवं लोकगीतों की शैली पर अध्यात्म आनन्द से सम्बन्धित प्रेमगीत लिखे हैं। इनमें मैं सब से अधिक विचार–गीतों को महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। भक्त और कवि होने के साथ–साथ परमानन्द एक महान चिन्तक और विचारक भी थे। उन्होंने जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों, मान्यताओं और विश्वासों को व्यापक भारतीय परिदृश्य में शैवशास्त्र और वेदान्त दर्शन के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ने उन्हें विशेष रूप से भारतीय–चिन्तन

के मूलभूत सिद्धान्तों के प्रति सचेत किया था। भगवद्गीता के निस्वार्थ कर्म सिद्धान्त से प्रेरित होकर उन्होंने अन्तिम समय तक सर्जन को अध्यात्मचिन्तन के साथ जोडकर नानाविध रूप से प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भगवतगीता को प्रेरक शक्ति–स्रोत के रूप में स्वीकारा है।

गीत परमानन्द की भावाभिव्यक्ति का प्रमुख साधन रहा है। गीत संगीत के बिना एकांगी अथवा एक पक्षीय होने के कारण अपूर्ण है। वर्णनात्मक कथा काव्यों में उन्होंने प्रसंगानुकूल संक्षिप्त गीतों की सृष्टि करके अनुभूति के अत्यन्त सूक्ष्म एवं मार्मिक बिम्ब उभारे हैं। ये गीत हृदय स्थित भावानुभूतियों, विह्वल कर देने वाली मनोदशाओं एवं अनुराग जन्य भावस्थितियों को साकार रूप प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। मैं इन्हें अनमोल मौख्तिक कण समझता हूँ जिन्हें कृष्ण भक्त परमानन्द ने कृष्ण की यारी (मैत्री) पर निछावर कर दिया है।[8]

कहीं कहीं इन गीतों में माधुर्य के रस के साथ साथ चिन्तन, विचार, दर्शन और अध्यात्म की चाश्नी घुल मिल गई है। संक्षिप्त शब्द चित्रों की सृष्टि अद्भुत है। नाज़ुक भावानुभूतियाँ प्रेमी जनों को अधीर कर देती हैं और वे मन ही मन रीझ भी जाते हैं और खीज भी उठते हैं। कहीं जीवन में आनन्द स्रोत फूट पड़ता है और कहीं जीना ही मुश्किल हो जाता है। कुछ कहने को जी मचल उठता है और रंगीले बालम की अदाओं पर मुग्धहोकर प्रेमी जनों की आँखों से हाँ–ना के साथ रोष भी टपकता है और रूठ कर मनाने की भाव भंगिमाएँ भी झलकती हैं। लाल, नन्दलाल, गोपाल और ब्रजबाल इन गीतों के केन्द्र बिन्दु हैं और समस्त बोल उसी के इर्द गिर्द चक्कर काटते नज़र आते हैं।

इन गीतों में उल्लेखनीय हैं :–

1. वैकुंठ बन्याव बिन्द्राबन सुय कथ वनुसुय रॅटनम जाय

परमानन्द – भाग–1 पृ0 119

2. डेशन छि सॉरी सु सर्वानन्द तति क्या ग्रेय्शुन छु परमानन्द

—परमानन्द – भाग–2 पृ0 80

3. तिम आसु खासु भगवान यिम आसु नेत्रव तस वुछान
कनवच तॅसुंज़ कथ बोज़ान मनव तॅसुंद ध्यान सोरान

—परमानन्द – भाग–2 पृ0 85

4. श्यामु सोन्दर मोरली वोलुई खेलि बना रास मंडोलुई

—परमानन्द – भाग–2 पृ0 123

5. लालो लालो बालु गूपालो, कर्‌यो चेय किच़ पोशन मालो

—परमानन्द – भाग–2 पृ0 171

6. आरस मंज़ अचॉवॉय विगने ज़न नचॉवॉय
लागोस पोश पूज़े कृष्ण जीव न्यंन्द्रि वुज़े
वोपरस कस पंचॉवॉय विगने ज़न नचावॉय ।

—परमानन्द – भाग–2 पृ0 229

*   *   *

परमानन्द ने विशुद्ध भक्ति परक रचनाएँ (भजन) भी लिखे हैं जहाँ भक्त पूर्ण समर्पण की अवस्था में ईश के सम्मुख नत मस्तक होकर भगवत् कृपा एवं ईशानुग्रह की याचना करता है। इन भक्ति रचनाओं में जीव अपने क्षुद्र अस्तित्व की यातनाओं से भयभीत होकर परमपिता की शरण में आकर अपने दैन्य पर क्षुब्ध होकर मालिक के सामने गुहार लगाता है। यहाँ प्रेमगीतों का वह रस और छलिया बालम की भावभंगिमाओं का उल्लेख नहीं है। यह वास्तव में दास्यभाव की भक्ति से प्रेरित इष्ट वन्दाना के अनुपम उपहार है। दो उदाहरण यहाँ पर्याप्त होंगे :–

1. आशि चानि बरतल आस अनाथ !
दास कॅवु छुस बु व्वदास अनाथ
परु यी तु ती करुनाव तु म्यॅ

ज़्यथ ज़्यथ मतु सरनावतु म्यॅ
परमानन्द यूगु अभ्यास अनाथ!
दास कॅवु छुस बु व्वदास अनाथ।
– 'परमानन्द' – भाग–1 भजन पृ0 254

2. यिम चानि दयायि रूज़िथ ति प्रारान गारान छुहक शिवय
तिमन चु गारान यिम छी गारान गारान छुहक शिवय
– परमानन्द – भाग–2 पृ0 253

भावातिरेक के कारण कभी कभी परमानन्द खिचड़ी भाषा में लीलाओं का सृजन करते हैं। परमानन्द जीवन पर्यन्त मट्टन में साधु सन्तों और महात्माओं के सम्पर्क में रहे जो देश के भिन्न भिन्न क्षेत्रों से अमरनाथ यात्रा के हेतु मट्टन में पड़ाव डालते थे। सिख गुरुओं और सन्तों का आना जाना भी लगा रहता। परमानन्द के पास भावाभिव्यक्ति और विचार– विनिमय का एक ही साधन था – हिन्दुस्तानी । परमानन्द ने इसी जन– सम्पर्क से हिन्दुस्तानी/रेख़ता भाषा को सीखा जिसमें हिन्दी, ब्रज, पंजाबी, अवधी और जादू भाषाओं के शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है। इस भाषा में न कहीं व्याकरण के नियम लागू हो सकते हैं और न ही साहित्यिक श्रेष्ठत्व अथवा लाक्षणिक अभिव्यक्ति के दर्शन हो सकते हैं। इसे लोगों ने भाषा नहीं भाखा कहा जो वास्तव में इस के लिए उचित नाम नहीं है। साधना के क्षणों मे कभी–कभी भक्त भीतरी उफ़ान को रोक न सकने के कारण अभिव्यक्ति के बन्धनों की परवा न करते हुए खिचड़ी भाषा में अपने आन्तरिक अनुभवों का साकार रूप प्रदान करता है। यह वास्तव में स्वतः प्रस्फुटन अथवा अकस्मात् धरती के वक्ष से जल स्रोत के फूट पड़ने की स्थिति है। कृष्ण प्रेम अथवा इष्टानुराग में नृत्यमग्न भक्त– कवि बन्धनों की चिन्ता न करते हुए अभिव्यक्ति के अनोखे साधनों को प्रयोग में लाकर यार की यारी निबाहता है –

चार उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :–

1. भिखा मांगनु सांग बनायो आयो सदा शिव गोकुल में
दर्शन करने को ध्यान धरायो आयो सदा शिव गोकुल में

–परमानन्द – भाग–2 पृ0 42

2. जागो जागो श्यामा चढ़ गया दिन,
आव दूध पीने जा नहा बदन
कमला मुख हंस हसं खोलो,
जो कुछ बोलो हम को बोलो
ना चखना नाही हम को ना बोलन,
आव दूध पीने जा नहा बदन

–परमानन्द – भाग–2 पृ0 89,90,91

3. श्यामा मुख सुन्दर दिखा दे,
मेरा मन कैसा सुख पावे
आप चेला होवे आप आचारी,
आप बनवासी आप व्यवहारी
न पावे कुछ ना पछतावे –
मेरा मन कैसा सुख पावे

– परमानन्द – भाग–2 पृ0 163

4. रुखी ने क्या बात सुनाया, चारों को स्यद साद बनाया
साधू होवे पावन हारी, मा लोकन गल पाव नु हारी
रुखी ने क्या बात सुनाया ।

–परमानन्द – भाग–2 पृ0 140

*   *   *

' विचार प्रधान काव्य '

परमानन्द की विचार प्रधान कविताओं का प्रकाशन सर्वप्रथम 'ज्ञान प्रकाश' में हुआ और श्री जयलाल कौल एवं 'साकी' साहब ने इनमें से कुछ रचनाएँ परमानन्द भाग–1 में 'भावनायि हुन्द बहार'

उपशीर्षक के अन्तर्गत संगृहीत रूप में प्रस्तुत की हैं। परमानन्द की आत्मिक उन्नति, परिष्कृत विचार पद्धति, ज्ञानानुभूति, जीवनानुभूति, वेदान्त दर्शन की जानकारी, कश्मीर शैवमत (त्रिक् शास्त्र) का ज्ञान एवं स्व–चिन्तन तथा कठोर साधनात्मक जीवन–यापन के परिणाम स्वरूप इन रचनाओं ने आकार ग्रहण किया है। मेरा मानना यह है कि केवल इन तीस–चालीस कविताओं के आधार पर हम परमानन्द को कश्मीरी विचार–प्रधान कविता के इतिहास में एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। यहाँ विचार, भावानुभूति, संगीतमय अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक बोध, धार्मिक आस्था, साधनात्मक जीवन के विविध अनुभव और भौतिक जग में मनुष्य की व्यवहार कुशलता सब ने मिलकर कथन को गहन–गम्भीर और मर्मस्पर्शी बना दिया है। ये कविताएँ पढ़ कर पाठक यह सोचने के लिये विवश हो जाता है कि जीवन की वास्तविकता क्या है। यह आना जाना आखिर क्यों ? यह अपने–पराये का बोध मनुष्य को किस दिशा में ले जाता है, जीवन की हक़ीक़त क्या है? यह अद्भुत अलौकिक शक्ति क्या है ? 'सहज विचार' की प्राप्ति कैसे सम्भव हो सकती है ? नश्वर जीवन का रहस्य क्या है ? अनेक प्रश्न एक साधनारत पाठक को अधीर बना देते हैं। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि परमानन्द की विचार प्रधान रचनाएँ हमें कुछ सोचने के लिये विवश करती हैं। यहाँ सोच प्रधान है, भावानुभूति अथवा कल्पना और सृजन अप्रधान । ये चीज़ें बाद में स्वयं आ जाती हैं। प्रस्तुत रचनाएँ परमानन्द के परिपक्व चिन्तन, श्रृंखलित (क्रम युक्त) विचार पद्धति और ज़मीन से ऊपर उठने के संकल्प को दोहराती हुई सृजन की नवीन सम्भावनाओं को तलाश कर कश्मीरी जन मानस को बहुत गहराई में प्रभावित करती है । श्री पी० एन० के० बामज़ई ने इस सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है :–

'Parmanand has left a deep stamp of his mystic and humane thought on Kashmiri Poetry, unsurpassed by any writer since ......

His poems are mainly religious and philosophical in theme. He is, however, less mystical and obscure than his great predecessor Lalleshwari.' ['A History of Kashmir' - P. N. K. Bamzai, Second Edition 1978, Metropolitan Book Co. (Pvt) Ltd., Delhi-6, Page 836]

' कर्म भूमिकायि दिज़ि धर्मुक बल '

परमानन्द की सर्वश्रेष्ठ मुक्तक रचना

'कर्म भूमिकायि दिज़ि धर्मुक बल' परमानन्द की एक चर्चित विचार प्रधान रचना है जिस में व्यक्त और अव्यक्त, प्रत्यक्ष और परोक्ष, स्थूल और सूक्ष्म तथा बाह्य स्वरूप एवं आन्तरिक चिन्तन को अन्योक्ति[9] के माध्यम से कृषि कर्म के साथ जोड़ कर क्रिया प्रधान कर्म–साधना के सहारे प्रस्तुत किया गया है। सामंती व्यवस्था, ज़मींदारी प्रथा, लगान बन्दी, कृषि कर्म एवं परम्परागत खेती बाड़ी के तौर तरीके इस कविता के बाह्य श्रृंगार हैं अवश्य परन्तु भीतर कवि साधनात्मक जीवन के विभिन्न पड़ाव तय करता हुआ आनन्दमय उपलब्धि की प्राप्ति हेतु व्याकुल कर्मरत (साधनारत) दिखाई देता है। उस भीतरी लोक में भी अर्जन की क्षुधा वैसे ही अधीर कर देती है जैसे कृषि कर्म रत किसान अपनी उपज के लिये आशावान होते हुए तथा कर्मरत रहते हुए भी भयाक्रान्त दिखाई देता है। डॉ० शशिशेखर तोषखानी के शब्दों में –'परमानन्द इस भाव सूत्र को प्रस्तुत करते हैं कि कर्म की भूमि को धर्म से सम्पुष्ट करके सन्तोष का बीज बोया जाये तो फल आनन्द का प्राप्त होता है।'[10]

कर्म, धर्म, सन्तोष एवं आनन्द अत्यन्त सारगर्भित शब्द हैं। 'कर्म' न्यायोचित कर्तव्य कर्म से जुडा शब्द है, 'धर्म' विपरीत परिदृश्य में स्थिर चित्त होकर अस्तित्व की रक्षा के हेतु सक्रिय होने की प्रेरणा देता है। 'आत्मसंतोष' तो विभूतियों का लक्षण है। साधानात्मक जीवन में इसकी महत्ता का एहसास शनैः शनैः होता है और 'आनन्द' दोनों भौतिक और आध्यात्मिक फल प्राप्ति की दिव्यानुभूति का

वाचक है। हमें यह मान कर चलना होगा कि परमानन्द एक सिद्धहस्त कलाकार (कवि) होने के साथ–साथ परिपक्व विचारक, चिन्तक और साधनात्मक जीवन में दिव्यानुभूतियों का केन्द्रित शक्तिपुंज था । उनमें अभिव्यक्ति की मौलिकता और सृजन की अद्भुत क्षमता एक साथ देखने को मिलती है।। यह उनका निजी अनुभव है, गहन साधना का प्रसाद और लोक सम्पर्क का धूल धूसरित प्रभाव। एक ही अक्ष (an axis) पर वे दो दो भूमिकायें एक साथ निबाहते हैं और अपनी क्षमताओं से जन–मानस को मुदित कर देते हैं। उन्हें कृषि कर्म (धान के खेती) के एक–एक पड़ाव की सम्यक् जानकारी है, वे तत्सम्बन्धी शब्दावली से पूर्ण परिचित हैं। आख़िर क्यों न हों, वे भी तो ग्राम निवासी खेतिहर किसान परिवार से सम्बन्धित हैं। अपने उस श्रम प्रधान भौतिक अनुभव से अध्यात्म के सूक्ष्म तन्तुओं को आकार प्रदान करने में परमानन्द ने कला की बारीकियों को ध्यान में रखते हुए विचार को अनुभूति से जोड़ कर अलौकिक आनन्द से शराबोर कर दिया है।[11] उनकी सृजन क्षमताओं को देखकर अनुभवी सहृदय कलाकार की आश्चर्य चकित हो उठते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि परमानन्द अपने सांस्कृतिक विरसे के साथ बहुत गइराई में जुड़े हुए हैं। देश पराधीन था – विदेशी सत्ताधारियों के अमानवीय व्यवहार की सर्पदंशी चुभन उस युग में भी तड़पा देती थी। सिखों का राज्यकाल तथा डोगरा शासन का शुरुआती युग परमानन्द के निजी अनुभव से जुड़ा था। यही वह ज़माना है जब विदेशी भाषाओं के स्वागत सत्कार में हम अपनी पहचान तक भूल चुके थे।

परमानन्द ने स्वदेशी पहचान के साथ–साथ स्वदेशी संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों की पालना करते हुए साधनात्मक जीवन की विभूतियों को कविताओं के ताने–बाने में पिरो दिया ताकि विषाक्त वातावरण में ये संजीवनी की भूमिका निबाह सके। ' कर्म भूमिकायि दिज़ि धर्मुक ज़ल ' रचना भी हमारी सांस्कृतिक पहचान से जुड़ी

विचार प्रधान कविता है जो आकार की दृष्टि से लम्बी कविताओं की श्रेणी में रखी जा सकती है।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लम्बी कविता लेखन की जो परिपाटी भारतीय भाषाओं विशेषकर राष्ट्रभाषा हिन्दी में हमें देखने को मिलती है उसका श्रीगणेश कश्मीरी भाषा में परमानन्द के द्वारा 19वीं शताब्दी में ही हो चुका था। 'सुदामा चरित' और 'शिवलग्न' तो कथा–आधृत लम्बी कविताएँ ही तो हैं। अतः लम्बी कविता को 20वीं शताब्दी की उपलब्धि मानने वाले बन्धुओं को तनिक पीछे मुड़ कर भी देखना चाहिए। लम्बी कविता–लेखन के क्षेत्र में परमानन्द का योगदान ऐतिहासिक है। इसमें वे समस्त तत्त्व हमें एक साथ देखने को मिलते हैं जिन्हें लम्बी कविता के लिये आवश्यक माना जाता है। कथा तत्त्व, सांस्कृतिक–गरिमा, लोक–विश्वास, परम्परा और मान्यताएँ, श्रृंखलित विचार–पद्धति, दार्शनिकता तथा परिपक्व अभिव्यक्ति – समस्त गुण हमें परमानन्द की लम्बी कविताओं में देखने को मिलते हैं।

इस कविता से एक उदाहरण मैं अर्थ सहित यहाँ सोद्देश्य प्रस्तुत कर रहा हूँ :–

कर्मु भूमिकायि दिज़ि धर्मुक बल
सन्तोषु ब्यालि बोवि आनन्द फल
द्वयि प्राणु दयन तु रात दान्दु जूरि वाय
कुम्भकु कुरु ज़ोरु तिमनय लाय
हलु कर युथ न रोजु बीठ कॉह स्यल
सन्तोषु ब्यालि बोवि आनन्द फल।

अर्थ :– कर्म भूमि को धर्म के जल से सींच कर तथा सन्तोष के बीज बोकर आनन्द फल की उपलब्धि होगी। प्रश्वास और निश्वास क्रिया रूपी दो प्राणों के बैलों की जोड़ी को निरन्तर दिन रात (ज़मीन जोतने के हेतु) जोतने में लगा। प्राणायाम में (पूरक,

कुम्भक, रेचक) में कुम्भक शक्ति और क्रिया रूपी चाबुक से इन्हें मारता जा (ताकि अच्छी तरह से ज़मीन जोतने की क्रिया पूरी हो) उद्योगी बन। कोई भाग जुते बिना न रह जाये। कोई खण्ड बंजर न रह जाये।

आध्यात्मिक रूप से कवि यहाँ श्वास क्रिया के नियन्त्रण की बात कहता है। प्राणायाम श्वास–प्रश्वास गति के नियमन पर बल देता है और योग–साधना के आठ अंगों में एक माना जाता है।

शब्दार्थ :– बीठ – बंजर ज़मीन; स्यल – टुकड़ा; हलुकर – उद्योगी बन, साहस जुटा; कुरह – कमची; द्वय प्राण – प्रश्वास–निश्वास की प्रक्रिया ।

यहाँ हिन्दू और मुसलमान का सवाल बेमानी और ग़ैर ज़रूरी हैं। यहाँ सम्पूर्ण मानव सृष्टि की बात हो रही है। एक अनुभवी ज्ञानी पण्डित के रूप में परमानन्द प्रत्येक सहृदय के ज़ेह्न के द्वार पर दस्तक देकर उसे कुछ सोचने समझने के लिये विवश करता है। इन विचार प्रधान कविताओं में अन्य उल्लेखनीय रचनाँ हैं :–

1. त्राहि माम त्राहे पाहे मुरारी, कट संकट ही मुकट धॉरी
2. दिहु वॉराग
3. सहज़ व्यचार करुन
4. नवि नवि बाशि बोज़
5. अमर पानो भ्रम संसार छुई
6. यन्द्रिय कूरन छु ॲन्दरियि गगनय
7. लूसिथ दोह वॅन्य कस छु प्रारुन
8. कुल तृ छाय
9. अज़पा गायत्री सूहमसो
10. त्राविथ छु गछुन वाँगजिवोर –' आदि

यहाँ कुछ कविताओं पर विस्तार से प्रकाश डाला जायेगा ।

1. " गिन्दुना छु ज़िन्दु मरुन सहज़ व्यचार करुन "

इस रचना में कवि अपने अहं (' मैं हूँ' का एहसास) को विस्मृत कर अस्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर विचार करता है। इस हाडमांस के शरीर के भीतर परमतत्त्व का निवास है जिसे वेदों ने व्याख्यायित किया और बुद्धिमानों ने तर्क की तुला पर तौल कर लोक मानस तक पहुँचाया । यही तो नूरे–इलाही है। सत्, चित् और आनन्द का समन्वित रूप जो प्रकृति के कण–कण में व्याप्त है। अद्वैत दर्शन के अनुसार यह सृष्टि तो उसी परमतत्त्व का विस्तार है। वही 'स्वयं प्रकाश ज्ञान' है ज्योति कणों का असीम संचित भांडार। अतः जीव वस्तुतः उसी की इच्छा का परिणाम है और उसी की इच्छा पर निर्भर है। यही एहसासि–हक़ (यथार्थ ज्ञानानुभव) कहलाता है। परमतत्त्व के अतिरिक्त शेष समस्त सृष्टि नाशवान है, क्षणिक, परिवर्तनशील और विकारी। भौतिक जीवन के मोह–पाश ही मनुष्य के मानस में अविवेक को जन्म देते हैं और आकर्षण की स्वर्ण श्रृंखलाएँ उसे मूल–स्रोत से बहुत दूर ले जाकर अकेले छोड़ देती हैं। जैसे किसी क़ैदी को एक निर्जन रेगिस्तान में पहुँचा कर यह कहते हुए मुक्त किया जाये कि ' जा अब तू आज़ाद है, अपनी इच्छा के अनुकूल जीवित रहने की कोशिश कर।' यह वह स्थिति है जहाँ वह मुक्त हुआ क़ैदी कितना भी चिलाये लेकिन सुनने वाला कोई नहीं है।

अतः परमानन्द बहुत सोच समझ कर हमें बाहर से भीतर प्रवेश पाने के हेतु साधनारत रहने की सलाह देते हैं। स्वयं उन्हें ईश्वर प्रेम पर अटूट विश्वास है। वह काया को स्वच्छ साफ़ करके आत्म नियन्त्रण की सीमाओं में बान्ध देता है। उनका मानना है कि इस काया के नौ द्वार हैं (मैं दस द्वार मानता हूँ – ब्रह्मरंध्र दशम द्वार है।) और मन भीतर ही भीतर गुत्थियों में उलझा हुआ मुक्ति के हेतु छटपटा रहा है। जब तक जीव इस काया के मोह बन्धन से मुक्त नहीं होगा तब तक परमानन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं। इस

काया के भीतर उस दिव्य–शक्ति को पहचानना तथा उस में लय होकर मुक्ति के आनन्द को प्राप्त करना और आत्मज्ञान का दीप प्रज्वलित कर मन–मन्दिर के हर गोशे को रोशन करना ही साधक का लक्ष्य होता है और इसे ही परमानन्द 'सहज़ व्यच़ार करुन' (सहज बुद्धि से विचार करना) कहते हैं। जीते जी मर जाना कोई सामान्य बात नहीं है इसके लिए भी आजीवन साधनारत रहने की आवश्यकता पड़ती है।

कवि ने अत्यन्त सहज भाव से कम से कम शब्दों का प्रयोग करके जीवन के लक्ष्य एवं उद्देश्य पर अद्वैतवादी दृष्टिकोण से अपने विचार व्यक्त किये हैं।

मेरा मानना यह है कि परमानन्द के व्यक्तित्व के तीन पहलू महत्त्वपूर्ण हैं।

1. वे एक उच्चकोटि के वैष्णव सन्त थे।
2. वे एक महान विचारक थे जिन पर भारतीय चिन्तन पद्धतियों एवं कश्मीर शैव–दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा है।
3. वे एक अनुभवी सर्जनात्मक कलाकार थे।

यही प्रवाहित त्रिवेणी उनके व्यक्तित्व को महान बना देती है। उन्होंने 'कागद लेखनी' नहीं अपितु आँखन देखी बात कही है।

उनके रचना संसार का यही तो आकर्षण है कि वे अपने अनुभूत सत्य को शब्दों के माध्यम से मूर्त रूप प्रदान करते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि परमानन्द की इन अनमोल रचनाओं का आज तक सविस्तार अध्ययन नहीं हुआ और न किसी बन्धु ने इन रचनाओं पर अलग से लिखने का प्रयास किया है। आवश्यकता इस बात की है कि रचना संसार के प्रत्येक अंग पर गहन गम्भीर दृष्टि से विचार किया जाये कयोंकि ये रचनाएँ शक्तिस्रोत के रूप में हमारी सांस्कृतिक पहचान, बुद्धि वैभव एवं अध्यात्मक चिन्तन के ऐतिहासिक साक्ष्य हैं । प्रस्तुत कविता से एक उदहारण द्रष्टव्य है :–

'गिन्दु ना छु ज़िन्द मरुन—सहज़ व्यचार करुन
पान रोस पान सोरुन सहज़ च्यचार करुन
शक्त वोनहस त शिवय—ज़ाव कस तु आव कॅवय
न्यश तु द्यन शिशि तु रवय—सहज़ व्यचार करुन
नव द्वार मन्दोरे चोपॉर मन दोरे
लुयि तथ त्रपूरे सहज़ व्यचार करुन
ललवुन छु ललुवुनुय बालु गूपाल कुनुय
वोन थाव छुक नु ओनुय सहज़ व्यचार करुन।

—परमानन्द भाग—1 पृ0 53,54,56,57

2. 'कुल तु छ़ाय' (वृक्ष और छाया)

प्रस्तुत कविता वस्तुतः एक प्रतीकात्मक कविता है जिसमें तीन शब्द—प्रतीकों के द्वारा एक गहन अनुभूति को वाणी प्रदान की गई है। परमतत्त्व का प्रतीक <u>**सूर्य**</u> है। आकार ग्रहण कर <u>**वृक्ष**</u> उस परमसत्ता का व्यक्त रूप है अर्थात् प्रकृति और <u>**छाया**</u> इस नाशवान जगत का प्रतीकात्मक रूप है।

छाया वृक्ष से झगड़ती है इस बात पर कि वह उसके और सूर्य के बीच आकर उन्हें परस्पर मिलने नहीं देता। वृक्ष को विश्वास है कि छाया का अस्तित्व उस पर निर्भर करता है, वह यदि नहीं रहेगा तो छाया का अस्तित्व ही मिट जायेगा । इतने में तेज़ हवा के झोंके से वृक्ष की टहनियाँ हिलने लगती हैं और सूर्य की किरणें हिलती हुई टहनियों के बीच में से प्रवेश करके छाया के अस्तित्व को ही खण्डित कर देती है।

वृक्ष और छाया दोनों अपने अपने पक्ष को लेकर सूर्य के पास पहुँचे। वृक्ष का मानना है कि छाया का अस्तित्व उस पर निर्भर करता है। वह उसे (छाया को) उसी में लय होकर वृक्ष बनने की प्रेरणा देता है। इतने में सूर्य किरणों के प्रवेश ने छाया को अपने क्षणिक वुजूद से परिचित कराया । उसे विश्वास होने लगा कि बिना

वृक्ष के उसका कोई अस्तित्व नहीं।

कवि कहते हैं कि सूर्य का सत स्वरूप परमतत्त्व समझ तथा वृक्ष को त्रिगुणमयी सृष्टि का प्रत्यक्ष रूप मान जीव इस सृष्टि पर अल्पकालीन अस्तित्व के साथ छाया की तरह रूप ग्रहण करता है और जब तक उसे प्रकृति आधार प्रदान करती है तब तक ही उसका अस्तित्व सुरक्षित रहता है।

इस प्रकार परम तत्त्व, सृष्टि (त्रिगुणमयी प्रकृति) और जीव के प्रतीकात्मक अर्थ से प्रस्तुत कविता अद्वैत सिद्धान्त और वेदान्त दर्शन के सार तत्त्व को अपने भीतर समेटे प्रबुद्ध पाठकों के आकर्षण का केन्द्र बन जाती है।

छाया सूर्य से मिलने अथवा सूर्य रश्मियों का साक्षात्कार करने के लिये व्याकुल है। यह वही अकुलाहट भरी स्थिति है जो एक जीव के मानस में 'सत प्रकाश' को देखने की अभिलाषा अर्थात् परमब्रह्म के साक्षत्कार की अभिलाषा के कारण उत्पन्न होती है। कवि वृक्ष और छाया के पारस्परिक संवाद के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :–

> "सत ग्वर तु बब म्योन श्री कृष्ण जीव
> त्र्यॅलूकी दिह तु सुई छुई ज़ीव
> सुई छुई कुल तु सुई जुज़ु कुल
> यम कॅड म्यॅचि़ मंजु रंगु रंगु गुल
> तॅस छस छायि हंद्य पॉठ अर्पण
> आश छम ज़ि सत प्रकाश वुछहन
> रोज़ि यलि कुलि के आसरु छाय
> अन्दयोस न्याय म्यॅति ॲन्दिनम न्याय ।"

– 'परमानन्द' भाग–1पृ0 115–116

3. 'कासि यमु भय चोन प्रेयम तु लो लो ।"

परमानन्द एक आस्थावान सगुण भक्त थे । उन्हें पूर्ण

विश्वास है कि जो ईश्वर कृपा का अनुभागी बन जाता है उसे मृत्यु का कोई भय नहीं रहता। जन्म और मरण उसके लिये व्यर्थ हैं क्योंकि वह जन्म मरण के बन्धन से छूट कर अपने आराध्य में लय हो जाता है। आनन्दावस्था अर्थात् कैलास पर पहुँचा भक्त केवल मानसरोवर के आनन्द लोक का ही विचरण करता रहता है। क्षुद्र भौतिक बन्धनों से ऊपर उठर कर तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहं की स्वर्ण श्रृंखलाओं को तोड़ कर वह विशुद्धावस्था में आत्म ज्योति से दीप्त हो उठता है। परमानन्द लिखते हैं कि अहं को नकारते हुए ईश प्रेम के आकषर्ण में बन्ध कर अपने वुजूद को सफल बनाने की आवश्यकता है। यह क्षणिक वुजूद स्थायी नहीं; जाने कब बुलावा आजाये गा। अतः सोऽहम् पर विचार करने का अर्थ है अपने जन्म को सफल बनाना। मृत्यु–भय की पूर्ण उपेक्षा करते हुए अपने भीतर प्रवेश करना ज़रूरी है। जब ईशानुग्रह की अमृत धारा से मानस सिक्त हो उठता है तो भीतर का रेगिस्तान देखते ही देखते शादाब (हरा भरा, सर सब्ज़) हो जाता । जिनके पास विवेक बुद्धि और पहचानने की शक्ति है, जिनका संकल्प दृढ़ है, जिन्होंने आत्मसंयम से काम लेकर इन्द्रियों को वश में किया है, जो हर स्थिति में समभाव से रहने का सामर्थ्य रखते हैं उन्हें भवसागर के पार उतरने में अधिक समय नहीं लगता। माँझी तो स्वयं नाव लेकर उनकी प्रतीक्षा में रहता है। कृष्णप्रेम के दीवाने जीवन के समस्त सुखवैभव को ईशाकषर्ण पर निछावर करते हैं। अष्टछाप के कवियों की रचनाएँ पढ़ कर आदमी आश्चर्य चकित रह जाता है। सूरदास ने अपनी बन्द आँखों से क्या क्या नहीं देखा है। विश्वास ही नही होता कि सूरदास नेत्रहीन थे। अतः परमानन्द कृष्ण–भक्त को पूर्ण आत्मसमर्पण कर तथा मृत्युभय को छोड़ कर इष्टाकर्षण में बन्ध जाने के लिए निरन्तर प्रेरित करता रहता है। यह जन्म मरण, आना–जाना केवल एक भ्रम है और इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं :–

" कासि यमु भय चोन प्रेयम तु लोलों,

ज़्योन मरुण युन गछुन छु भ्रम तु लो लो
गाल हन हन कालुक त्रास मॉशराव,
ज़ाल मरु मरु सोर वसवास मॉशुराव
वरणआश्रम करिथ सन्यास मॉशुराव
ब्वद पनॅनी छॅ स्वद सूहम तु लो लो
ज़्योन मरुण युन गछुन छु भ्रम तु लो लो ।

—परमानन्द भाग—1, पृ0 40

4. 'कीशव छति कीशु मतु दॅशरावतम"

प्रस्तुत भक्तिगीत एक विशिष्ट भावानुभूति पर आधारित है। दास्य—भाव की भक्ति का अनुपम रूप हमें इस गीत में देखने को मिलनता है। कवि को पूर्ण विश्वास है कि ईशानुग्रह के बिना जीवन में कुछ भी सम्भव नहीं होता। पूर्ण नियंता प्रकृति के कण—कण से परिचित है और जीव—प्रकृति तो वास्तव में उन्हीं की इच्छा का परिणाम है। यह मानव शरीर तो एक प्रयोगशाला है जिसमें वह महान वैज्ञानिक निरन्तर प्रकृति अनुसन्धान में रत रहता है। कभी—कभी जीव निराश भी हो उठता है परन्तु मन की इन दुर्बलताओं को वश में करके वह मात्र ईश कृपा के सहारे दुर्गम पथ पर चलने की दृढ़ संकल्प दोहराता है।

भक्ति में आत्म निवेदन और पूर्ण समर्पण (complete surrender) का अपना विशेष महत्त्व है। यह वह अवस्था है जहाँ भक्त भौतिक राग—अनुराग से दूर हट कर अध्यात्म पथ का राही बन कर अद्भुत की तलाश में निकलता है। सत्यम् और शिवम् से वह परिचित है परन्तु उसे तलाश है सुन्दरम् की। उसके पास ज्ञान नहीं। योगाभ्यास का सामर्थ्य नहीं अतः असहायावस्था में वह इष्ट चरणों में पूर्ण समर्पण कर देता है और अनुग्रह प्राप्ति के हेतु यों करबद्ध श्रद्धा सुमन अर्पित करता है। केशव को मनाने का प्रयास

इस स्तुति गीत में देखने योग्य है :–

" कीशव छति कीशु मतु दॅशरावतम
हावतम पनुनी ईशर गथ
आय आम सोरान तु पायस पावनम
बलुरोस काये नतु पलज़्यम कथ
बुजरस डलु मा तु अथु रटु नावतम
हावतम पनुनी ईशर गथ
छुम खसुन कोह मतु दोह लोसुनावतम
खसु कोर वसु कोर ब्रोन्ह तय पथ
रसु रसु पनुने वति पकु नावतम
हावतम पनुनी ईशर गथ।
रामु नाम लंकायि डास करुनावतम
रावुन्य पॉवनम न्यन्द्रे च़्यथ
कोम्बु करनस ज़न न्यन्द्रि वुजुनावतम
हावतम पनुनी ईशर गथ।।"

— 'परमानन्द' भाग–1, पृ0 32

* * *

यह बात नहीं है कि श्रीकृष्ण से अलग हट कर उन्होंने किसी अन्य अलौकिक शक्ति के प्रति अपना विश्वास प्रकट न किया हो। 'शिवलग्न' को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि परमानन्द शिव के भी इतने ही अनन्य उपासक थे जितने वे कृष्ण के थे। वस्तुतः यह समन्वयवादी दृष्टिकोण परमानन्द की उस उदात्त विचार श्रृंखला की ओर संकेत करता है जहाँ पहुँच कर सब एक ही परमशक्ति में लय हो जाते हैं। यहाँ उनके चिन्तन पर अद्वैतवादी दर्शन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। लेकिन यह कहना आवश्यक है कि परमानन्द निर्गुण क तुलना में सगुण को अधिक मान्यता देते हैं और सगुण भक्ति पर ही उन्हें अटूट विश्वास था। वैष्णव–भक्ति पर आधारित

काव्य का भव्य रूप हमें कश्मीरी काव्य में 19वीं शताब्दी में परमानन्द तथा उसके समकालीन वैष्णव भकत कवियों में देखने को मिलता है। यह आन्दोलन शेष भारत में कई शताब्दी पूर्व ही सक्रिय था। कश्मीरी सगुण राम–भक्ति काव्य के क्षेत्र में जो योगदान पण्डित प्रकाश राम कुरिगामी का रहा है वही योगदान कश्मीरी कृष्ण– भक्ति काव्य के क्षेत्र में परमानन्द का रहा है।

* * *

परमानन्द एक सिद्धहस्त भाषा पण्डित

सगुण वैष्णव भक्ति पर दृढ़ आस्था रखने वाले परमानन्द के अभिव्यक्ति पक्ष पर अर्थात् भाषा पर विचार करना अब सार्थक होगा। उन्होंने अपने काव्य–विषय के अनुरूप भाषा का व्यवहार किया है जिसका झुकाव संस्कृत की तत्सम शब्दावली के प्रति सर्वाधिक है। लेकिन यह कोई दोष नहीं है । कश्मीरी भाषा की जननी तो वैदिक भाषा ही है जिसके लौकिक रूप का सुधार संस्कार करके पाणिनि ने इसे **संस्कृत** नाम से विभूषित किया है। मुस्लिम राज्य काल में कश्मीरी भाषा की शब्द सम्पदा में पर्याप्त वृद्धि हुई है। अरबी, फारसी, तुर्की तथा पहाड़ी भाषाओं के शब्द प्रयोग तथा एक नवीन संस्कृति के हावी हो जाने से कश्मीरी धर्मान्तरित जनमानस की आकांक्षाओं के अनुकूल फारसी शब्द–बहुल भाषा का रूप धारण करने लगी। इतिहास के द्रुत परिवर्तित युग में यह विकास की स्वभाविक प्रकिया है। ऐसा होना ज़रूरी था। परमानन्द एक विशिष्ट सांस्कृतिक स्रोत से जुड़ा कवि है। उस विशिष्ट संस्कृति की अन्तरात्मा से प्रेरित प्रभावित कवि के लिये यह ज़रूरी था कि वेदान्त, अद्वैत, शैवमत एवं वैष्णव सम्प्रदाय की मान्यताओं एवं सिद्धान्तों को अपनी रचनाओं में समेटते समय वह तत्सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करें। यदि वे ऐसा न करते तो लक्ष्य प्राप्ति में कभी सफल न होते। भारतीय धर्म, दर्शन, योग साधना,

पुष्टि मार्ग तथा अन्य विचार पद्धतियों से सम्बन्धित सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति के हेतु पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग नितान्तावश्यक था। ऐसे शब्द प्रयोगों से कश्मीरी भाषा के शब्द कोश में मूल्यवान वृद्धि हुई है। यदि हम तसव्वुफ़ से सम्बन्धित विदेशी पारिभाषिक शब्दावाली को कश्मीरी भाषा में अपना सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि परमानन्द की संस्कृत–तत्सम–शब्द बहुल भाषा पर आपत्ति उठाई जाये। जहाँ तसव्वुफ़ ने हमारी भाषा को सम्पन्न बना दिया है वहाँ सगुण वैष्णव भक्त कवियों के भाषा प्रयोग से भी कश्मीरी गौरवान्वित हुई है। मैं यह बात भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि परमानन्द कश्मीरी भाषा के प्रबुद्ध रचनाकार हैं। सम्पूर्ण मानवजाति के उत्थान के हेतु प्रकृति के रहस्य को पहचान कर कर्म की महत्ता को स्थापित करते हुए वे किसी जाति विशेष अथवा वर्ग विशेष तक ही सीमित नहीं रहते बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज के उत्थान की बात करते हैं। सर्वजनहिताय वे साधना रत रहे। सम्पूर्ण मानव समाज को आनन्दमय भाव भूमि तक ले जाने के हेतु वे सृजन के असीम लोक के साथ जुड़ जाते हैं।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि परमानन्द की शिष्य परम्परा में हिन्दू और मुसलमान दोनों आते हैं। श्री सालेह ग़नाई परमानन्द को गुरु– रूप में मान्यता प्रदान कर आजीवन सेवा रत रहे।

परमानन्द कृष्ण प्रेम के हेतु सांसरिक बन्धनों एवं क्षुद्र स्वार्थमय एषणाओं को कोई महत्त्व नहीं देते । संकल्प की दृढ़ता और हृदय की शुद्धता तथा कर्मरत रहने की ललक दिव्यानन्द प्राप्ति के लिए पर्याप्त हैं।

बात परमानन्द की भाषा पर चल रही है। जीवन के उषाकाल में ही परमानन्द अपने स्वर्गीय पिता से फ़ारसी भाषा की जानकारी प्राप्त करते हैं। एक पटवारी के लिये उस युग में फ़ारसी भाषा–बोध नितान्तावश्यक था। महात्माओं, सिद्ध पुरुषों और सन्तों के सम्पर्क में आकर परमानन्द भारतीय दर्शन एवं चिन्तन से सम्बन्धित

शब्दावली से परिचित हुए । उन्होंने लोक प्रचलित भाषा का भी खुल कर व्यवहार किया है और 19वीं शताब्दी में दक्षिण कश्मीर में व्यवहृत कश्मीरी जन–भाषा अथवा लोक भाषा का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है। श्री मुहम्मद यूसुफ टेंग ने लिखा है :–

" परमानन्द कश्मीरी भाषा के कदावर शायिरों की गिनती में आते हैं। भक्ति भाव की लता पर प्रफुल्लित यह गुलाब उस पुष्पित बसंत का संदेशवाहक है जिसे पतझड़ की जर्जरता कभी छू नहीं सकती ।"[12]

सिखों के सम्पर्क में आकर वे पंजाबी भाषा से पर्याप्त प्रभावित हुए अतः खिचड़ी भाषा में रचनाएँ लिखते समय वे पंजाबी भाषा का खुल कर प्रयाग करते हैं।

परमानन्द स्वयं बहुत अच्छे गायक थे। कृष्ण लीलायें स्वयं गा कर सुनाते थे और उस समय सम्पूर्ण वातावरण संगीतमय हो उठता। वे कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मोहित थे, यही कारण है कि उनकी रचनाओं में अलौकिक रूप लावण्य के साथ–साथ प्रकृति के मोहक दृश्य बिम्ब हृदय को छू लेते हैं। परमानन्द के अभिव्यक्ति पक्ष का सौन्दर्य निम्न–लिखित काव्य उदाहरणों में देखते ही बनता है :–

1. 'तस कुस मरि तु सु कस मरे, युस प्रावि मरे सहज़ भाव।'

—भाग–1 पृ0 51 (यमक अलंकार)

2. 'परमानन्दु वोन्दस – कृष्ण पान वन्दस
सोन्तस क्या तु वन्दस – सहज़ व्यचार करुन।'

—भाग–1 पृ0–57 (यमक अलंकार)

3. 'गूरु गूरु करुयो गोवरधन लालो वे
आनन्द गन म्यानि क़न्द बरयो थालोवे ।'

—भाग–1 पृ0–62 (लोक रंग)

4. 'बॉइ बन्द तु बब मोज ज़न्मुच लार छय

प्यतरुन खार छय मटि मटि यि बार
फॉज़िल तु बॉक़ी तति नॅनिराविथ
त्रॉविथ छु गछुन वाँगुजवोर ।'

(विदेशी शब्द प्रयोग) भाग–1 पृ0 89

5. 'छायि दोप स्यठाह वॉर कोरॅनम कुल्य
छायि रुदुम अॅछन पॉवनम फुल्य
तमन्ना छुम सिरयि वुछ हन गाह
द्राम नॅति नेरयम सुई शर ज़ांह
कुल्य दोपुस म्यॉनिस सायसतल
वचुखै तु नतु त्राव बचनुच कल।

(मुहावरों का प्रयोग) भाग–1 पृ0 113

परमानन्द ने सांस्कृतिक शब्दावली का प्रयोग तत्सम, अर्द्धतत्सम एवं तद्भव रूप में किया है। तद्भव शब्दावली ही वस्तुतः कश्मीरी शब्द कोश की निजी सम्पति मानी जायेगी। शब्द प्रयोग सम्बन्धी कुछ उदाहरण देखने योग्य हैं :–

'उपनिषद्, अरुण (देवता), अभ्यागत, अरुणदती, अगस्त,
अमरावती।

ब्रह्मस्योश, बरखवान (तद्भव शब्द प्रयोग – मूल शब्द
वृषभानु)

प्रदिख्यन (प्रदक्षिणा), दारिका (द्वारिका), चराचर (चराचर)

सॅन्यच्यथ (संचित), सॅहज़भाव (सहज भाव)

शशकल (तसव्वुफ – ज्ञान बोध की स्थिति) श्यामु स्वन्दर
(श्याम–सुन्दर)

शीव (शिव), कामदीव (कामदेव), कर्मयूगी (कर्म योगी)

ख्यमा (क्षमा), ग्वन (गुण), लॅखमी (लक्ष्मी)

मूलादर (मूलाधार – हठयोग), म्यॅत्राचॉरी (मैत्री भाव)

न्यथ्र – (नेत्र), वीद (वेद), व्यच़ार (विचार), व्यमान (विमान), यन्द्र (इन्द्र), हसरत, मुह माया (मोह माया) नवदार, (नौद्वार) ईशर (ईश्वर) ग्वर (गुरु), व्वपदीश (उपदेश, आदि।

शिष्य परम्परा में दो उल्लेखनीय नाम

परमानन्द की शिष्य परम्परा में दो नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं – सालेह ग़नाई एवं लक्ष्मण जू रैणा 'बुलबुल'। सालेह ग़नाई मट्टन इलाके के ज़ैलदार थे। परमानन्द की ज्ञान गरिमा से प्रभावित होकर वे उनकी शिष्य मण्डली में शामिल हुए । इसके पश्चात् गुरु–कृपा से आह्लादित वे गुरु की सेवा शुश्रषा में नियमित रूप से लगे रहे। नौकरी छोड़ देने के बाद आय का कोई साधन न होने के कारण सालेह गनाई उनके खाने पीने की स्वयं व्यवस्था कर देते थे। उन्हें परमानन्द की दिव्य शक्तियों पर अटूट विश्वास था और मुसलमान होते हुए भी वे एक पहुँचे हुए हिन्दू सन्त के प्रति समर्पित थे। परमानन्द का आध्यात्मिक दृष्टिकोण इतना व्यापक एवं विस्तृत था कि इसकी परिधि के भीतर समस्त मानव समुदाय की बात की जा सकती है। हम इसे किसी सम्प्रदाय या वाद के सीमित सीखचों में बान्ध नहीं सकते । यहां इनसान प्रमुख है – हिन्दू या मुसलमान नहीं। यहाँ सृष्टि की बात होती है किसी सम्प्रदाय या वर्ग की नहीं । यहाँ भक्ति के साथ प्रेम का महत्त्व है जो वास्तव में इश्के–इलाही या अलौकिक प्रेम का वाचक है। सालहे गहनाई के अतिरिक्त मट्टन और आसपास के इलाके में कई मुसलमान और सिक्ख परमानन्द के प्रति आकृष्ट थे।

परमानन्द के दूसरे शिष्य पण्डित लक्ष्मण जू रैणा 'बुलबुल' (1826–1898 ई0) हैं। पण्डित लक्ष्मण जू स्वयं कृष्णानुरागी हरि–भक्त थे और लीला काव्य लिखने में सिद्धहस्त। परमानन्द के 'राधास्वयंवर' वर्णनात्मक कथा काव्य में लक्ष्मण जू की कई लीलाओं

का समावेश हुआ है । कश्मीर में गुरु शिष्य परम्परा के अन्तर्गत प्रायः ऐसा होता था। मैं पाठकों की जानकारी के लिये एक और उदाहरण पेश करता हूँ । पण्डित प्रकाश राम कुरिगामी (1819–1885 ई0) के 'रामवतार चरित' में उनके एक चर्चित शिष्य मागाम–कश्मीर निवासी पण्डित वासुदेव की बहुत प्रसिद्ध रचना संगृहीत है। एक दिन जब प्रकाशराम 'रामवतार चरित' लिख रहे थे, मागाम के निवासी पण्डित वासुदेव उनके पास आये और बातों बातों में अपनी एक रचना उनको सुनाई। प्रकाश राम सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और अपने शिष्य को आशीर्वाद देते हुए उनकी रचना को नामसहित 'रामवतार चरित' में दर्ज किया। रचना के बोल हैं :– 'न्यशकलु न्यशकामै भजन कर रामु रामै ' ('राम अवतार चॅरयत' जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन– सन् 1965)। लक्ष्मण रैणा की रचनात्मक क्षमताओं से परमानन्द परिचित थे और बड़ी उत्सुकता के साथ उनकी प्रतीक्षा में रहते थे और रचनाएँ सुनकर उनकी दाद देते थे। जहाँ सुधार की आवश्यकता होती वहाँ सुधार भी करते थे।

परमानन्द के देहान्त के बाद सर्वप्रथम पण्डित लक्ष्मण रैणा 'बुलबुल' ने ही उनकी रचनाओं का संग्रह तैयार किया है जिसे उन्होंने 'कुलयाति परमानन्द' नाम दिया ।

संवत् 1936 तदनुसार 1879 ई0 में भाद्रपद शुक्ल पक्ष पंचमी के दिन परमानन्द स्वर्ग सिधारे।

निष्कर्ष :

इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि भक्त कवि परमानन्द ने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कश्मीरी भाषा में कृष्ण भक्ति से प्रेरित लीला काव्य को नई सम्भावनाओं एवं उदभावनाओं के द्वारा प्रेमाकर्षण के डोर में बाँधते हुए वैचारिक गरिमा प्रदान की । इनके काव्य में जब तक विचार और चिन्तन के सूत्रों को न तलाशा जाये तब तक सर्जन की गरिमा का सम्यक् बोध नहीं हो सकता। वे एक

महान साधक थे – सगुण कृष्ण भक्त कवि। साधनारत प्रतिभा सम्पन्न दिव्य पुरुष । लेकिन हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि वे एक असफल गृहस्थ थे । गृहस्थ जीवन और साधनात्मक जीवन में वे सन्तुलन स्थापित न कर सके। चार बच्चों की माता होने के बावजूद मालद्यद कभी उनसे ख़ुश न थी। बराबर लताड़ती रही और अपने दुर्भाग्य का रोना रोती रहती। वे पटवारी थे नाम मात्र के, काम के नहीं। इस लिये नित्यप्रति पत्नी के व्यंग्य बाणों से आहत होकर चुप्पी साध लेते । भौतिक जीवन की एषणाओं के प्रति वे कभी आकर्षित नहीं हुए, प्रायः कृष्ण प्रेम का अमृतपान कर सन्तुष्टावस्था में आनन्दानुभव करते रहे।

इसमें सन्देह नहीं कि साधना के क्षेत्र में उन्हें सिद्धि प्राप्त थी और अलौकिक चिन्तन में ही चिरमग्न दिखाई देते थे। सांसारिक आकर्षण उनके लिये व्यर्थ थे। ससीम की सीमाओं से ऊपर उठकर असीम के अद्भुत सौन्दर्य को तलाशने के हेतु वे साधना रत रहे। यह कहना उचित होगा कि परमानन्द के रचना संसार का सर्वप्रथम आकर्षण है – कृष्ण प्रेम।[13] 'लोल' को उन्होंने अपने जीवन की श्रेष्ठतम पूंजी के रूप में मान्यता प्रदान की। उन्होंने अपना सर्वस्व इस 'लोल' के हेतु दाँव पर लगा दिया।

परमानन्द को मृत्युबोध का गहन एहसास था। यह एहसास उन्हें बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के काव्य–मानस के साथ जोड़ देता है। उन्होंने जीवन के क्षणिक अस्तित्व पर अपने मानस की अकुलाहट को व्यक्त करते हुए ज्योति–कणों को समेटने की चेष्टा की है।

उनका लीला काव्य विचार बोझिल है यही कारण है कि सामान्य जन–मानस के समीप आते हुए भी बहुत दूर रह जाता है। परमानन्द जन्मजात कवि थे। भाषा पर उन्हें असाधारण अधिकार था।[14] लेकिन विशिष्ट चिन्तन से प्रभावित होने क कारण वे एक सीमित परिधि के भीतर एक एक अनमोल मौक्तिक कण माला में

पिरोता रहा। प्रत्येक कण असंख्य द्युतिकणों का संचित कोश है।

परमानन्द को पहचानने के लिये परिपक्व बुद्धि के साथ–साथ रस–कणों से सिक्त रुचि और रसिकता (ज़ौकोशोक़) का होना नितान्तावश्यक है। साधना रत साधक की भावभूमि पर पहुँचकर ही उसके रचना संसार की गरिमा को पहचाना जा सकता है। पहचान के लिये अन्तर्दृष्टि, बुद्धि विवेक, संस्कृति बोध एवं निष्कपट हृदय चाहिये। अवश्य स्वर्ण–रश्मियों की छटा से मानस का तमसान्धकार मिट जायेगा और अन्तर्बाह्य सम होकर दीप्त हो उठेगा।

" पांचन दोहन आस करनि सॉला
यि छु दुनिया मोत मॉला
क्या छु ह्योन द्योन क्या छु न्युन चन्दसई
कथ वनसई रटॅनम जाय। '

'परमानन्द' – भाग–1, पृ0–119

– 0 –

22 अगस्त, 2005 ई0

सन्दर्भ संकेत :–

1) 'अध्यात्म की ओर नन्दराम का मन छुटपन ही से झुका था। अपने पिता कृष्ण पण्डित से उन्होंने दीक्षा भी ली थी । बाद में योगियों के सम्पर्क में आकर योग–साधना भी करने लगे थे।' –

'परमानन्द प्रवाह' –प्रो0 पृथ्वीनाथ पुष्प– अकादमी प्रकाशन सन् 1981 पृ0 7–8

2. 'परमानन्द – भाग–1 सम्पादक – जयलाल कौल एवं मोतीलाल साकी – जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन – सन् 1972 ई0, पृ0 15

3. 'अध्यात्म साधना की कई मंज़िलें तै करके आख़िर वे उस अवस्था को पहुँचे जिसे उन्होंने अपने गीतों में 'सहज विचार' का नाम दिया है ।' –

'परमानन्द प्रवाह' – प्रो0 पृथ्वीनाथ 'पुष्प'– जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन – सन् 1981 ई0, पृ0 7–8

4. 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' – शशिशेखर तोषख़ानी – पृ0 173

5. 'परमानन्द ने उन्हें प्रेम की भावमयी प्रतिमा बनाया है। परमानन्द की राधा सरल स्नेहमयी है, ... उनका प्रेम समपर्णाकुल है, केवल देना ही देना जानता है ।' – 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' डॉ0 शशिशेखर तोषख़ानी, पृ0 175

6. 'स्वामी परमानन्द श्रीकृष्ण के सच्चे भक्त थे और उनकी ज़ात में महव (तल्लीन) हो जाते थे। उनको प्रकृति के कण कण में आभा ही नज़र आती थी ....

शायिर श्रीकृष्ण का जलवः (दर्शन, दीदार) ज़ाहिरी आँखों से देख रहा है और परवाने की तरह इसके इर्द गिर्द घूम घूम कर जान निछावर कर रहा है। ...... जिस समय इन पर सरूर की यह कैफ़ियत तारी होती है वह खड़े होकर नृत्य करने लगते थे।'

'कश्मीरी ज़बान और शायिरी' : भाग–3, अब्दुल अहद आज़ाद, जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन – सन् 1963 ई0 पृ0–33

7. 'उसके अनुसार ईश्वर का प्रेम अन्तर में उबल पड़ने वाला वह स्रोत है जो अंग अंग को, शिरा–शिरा को अपनी तरल शील लहरों से सरस कर देता है। भीतर ही भीतर जब इस का जल छल–छला उठता है तो सभी कुछ – बोध तक – उसमें डूब जाता है। मन के अवरोधों को हटा दो और प्रेम की

फुहार को भीतर आने दो ताकि चेतना पूरी की पूरी भीग जाए — परमानन्द की गीतात्मक रचनाओं में यह आवाहन गूँजता प्रतीत होता है ।'

'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' डॉ0 शशिशेखर तोषखानी, पृ0 184

8. 'हमारे परमानन्द जिस शाख़ (हटनी) के बुलबुल थे वे कृष्ण भक्ति की शाखा है । .... उनका हृदय भगवान कृष्ण के चरण कमलों की तमन्ना (कामना इच्छा) उसी प्रकार करता था जैसे तुलसीदास श्रीराम के अनुग्रह की कामना करते थे ।'

   'परमानन्द' भाग–2 – भूमिका – प्रोफ़ेसर श्रीकंठ तोषख़ानी एवं मोतीलाल साक़ी – पृ0 11

9. "'अन्योक्ति' – 'ऐसी उक्ति जो साधर्म्य के कारण कथित वस्तु के अतिरिकत औरों पर भी घटित हो सके।"

   'बृहत हिन्दी कोश' – ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी 200 ई0, पृ0 58

10. 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' — डॉ0 शशिशेख़र तोषख़ानी, जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन – 1985 ई0 पृ0– 181

11. "परमानन्द की रचनाओं में आपको किसानी जीवन की विसंगितयों का जो रूपकात्मक चित्रण मिलेगा, उसकी तह में सामंती दौर की व्यापक मनोवृत्ति का विडम्बन भी दिखाई देगा। वह यह कि ईश्वरी सत्ता को भी सामंतशाही व्यवस्था के साँचे में ढलना पड़ता है ।

    'परमानन्द प्रवाह' – प्रो0 पृथ्वीनाथ 'पुष्प' , पृ0 11

12. "'परमानन्द' भाग–2 – जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन–1974 ई0 प्रकाशक का निवेदन – मुहम्मद यूसुफ टेंग; पृ0 – 3

13. "मन के अवरोधों को हटा दो और प्रेम की फुहार को भीतर आने दो ताकि चेतना पूरी की पूरी भीग जाए – परमानन्द की गीतात्मक रचनाओं में यह आवाह्न गूँजता प्रतीत होता है।

    'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' – डॉ0 शशिशेखर तोषखानी, जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन– सन् 1985 ई0 पृ0 184

14. "आपने कश्मीरी ज़बान की जो खिदमत अंजाम दी वह काबिल तारीफ़ है।'

    'कश्मीरी ज़बान और शायरी' अब्दुल अहद आज़ाद – भाग–3, पृ0 66

सहायक पुस्तक सूची

1. 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास '– डॉ0 शशिशेखर तोषख़ानी; प्रकाशक– जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी, जम्मू – सन् 1985 ई0 (देवनारगी लिपि)

2. 'कश्मीरी भाषा और साहित्य' – डॉ. शिबनकृश्ण रैणा; सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली–7, सन् 1972 ई0 (देवनारगी लिपि)

3. 'कश्मीरी ज़बान और शायिरी' –भग–3, अब्दुल अहद आज़ाद; प्रकाशक– जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी, श्रीनगर, सन् 1963 ई0 (फारसी लिपि)

4. 'कॉशरि अदबुक तवॉरीख' – नाजी मुनॅवर, शफी शौक़, प्रकाशक– कश्मीरी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर – सन् 1978 ई0 (नस्तालीक़ लिपि)

5. 'ज्ञान–प्रकाश' – प्रकाशन व्यवस्था – पण्डित निरंजन नाथ रैणा, मरकंटाइल प्रेस, श्रीनगर– सन् 1965 ई0 (फारसी लिपि)

6- 'Glimpses of Kashmir Culture' Series 1, 2, 3, (1975&1977) Editor - Prof. K. N. Dhar, Shri Parmanand Research Institute, Rughnath Mandir, Srinagar Publications.

7. 'परमानन्द'– भाग–1– सम्पादक – जयलाल कौल एवं मोतीलाल साक़ी– जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन– सन् 1972 ई0 (नस्तालीक़ लिपि)

8. 'परमानन्द'– भाग–2 सम्पादक – प्रो0 श्रीकंठ तोषख़ानी एवं मोतीलाल 'साक़ी', जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन – सन् 1974 ई. (नस्तालीक़ लिपि)

9. 'परमानन्द' (श्रेष्ठ रचनाओं का भाषानुवाक), प्रो0. श्रीकंठ तोषख़ानी – जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन, सन् 1960 ई0 (नस्तालीक़ एवं फारसी लिपि)

10. 'परमानन्द प्रवाह' (चुनी हुई श्रेष्ठ रचनाओं का हिन्दी अनुवाद) श्री पृथ्वीनाथ 'मधुप' जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन – सन् 1981 ई0 (देवनागरी लिपि)

11. 'Studies in Kashmiri' - Prof. Jay Lal Kaul, Kapoor Brothers, Srinagar Kashmir Publication 1968 A.D.

12. 'बृहत् हिन्दी कोश' – ज्ञानमण्डल लिमिटिड़ वाराणसी, 2000 ई0 (आठवाँ संस्करण)

13. 'हिन्दी कथा–कोश' – हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद– 1954 ई0 (पौराणिक अन्तर्कथाओं का सन्दर्भ–ग्रन्थ)

– 0 –

संजीवनी शारदा केन्द्र

(एक संक्षिप्त परिचय)

शारदा के वैभवशाली स्वरूप की प्रतिष्ठा बनाये रखने हेतु तथा समस्त राष्ट्रभक्तों में विशेषकर विस्थापित देशवासियों में अपने धर्म, समाज एवं राष्ट्र के प्रति अनुराग एवं कर्तव्य भावना को सुदृढ़ बनाने हेतु 'संजीवनी शारदा केन्द्र' की स्थापना, 2 सितम्बर 1995 ई0 में शारदा अष्टमी के दिन जम्मू क्षेत्र के आनन्द नगर, (बोड़ी) में हुई ।

शारदा माता, सरस्वती एवं दुर्गा दोनों की सूचक है। ज्ञान, विवेक एवं विद्या की देवी सरस्वती तथा धैर्य, सामर्थ्य एवं शक्ति की देवी दुर्गा (पार्वती) दोनों शारदा में समाये हैं अतः एक बार पुनः शारदा पीठ (कश्मीर) की गरिमा अद्वितीय रूप में संसार के आकाश में चमक उठे, यही संकल्प 'संजीवनी शारदा केन्द्र' की स्थापना में निहित है।

यही संकल्प साकार करने हेतु तथा अपने गौरवशाली पूर्वजों की धरोहर की क्षतिपूर्ति के लिये 'संजीवनी शारदा केन्द्र' ने अपनी गतिविधियां चलाने के लिए कुछ कार्यक्षेत्र एवं लक्ष्य निर्धारित किये हैं यथा :-

1. संजीवनी भवन का निर्माण।
2. मुख्य धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक उत्सवों का सामूहिक आयोजन ।
3. जनहित अभियान के अन्तर्गत व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों की व्यवस्था ।
4. इतिहास एवं कश्मीर संस्कृति के संदर्भ में शोध-कार्य तथा शारदा व्यबसाइट का प्रवर्तन।
5. शारदा लिपि एवं संस्कृत भाषा का पठन-पाठन।
6. एक भव्य पुस्तकालय की स्थापना
7. प्रकांशन विभाग की स्थापना।

अपने कार्यक्रमों को सुचारू ढंग से चलाने के लिए आनन्द नगर (बोडी) मे खरीदे एक भूमि खण्ड पर शारदा भवन निर्माण के पहले चरण में एक भव्य सभागार का निर्माण हुआ है।

युवावर्ग को स्वावलम्बी बनाने के उद्देश्य से योजना–बद्ध रूप से कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। इस तरह केन्द्र को एक बहुआयामी संस्थान में विकसित करने की योजना है। इसी संदर्भ में केन्द्र द्वारा एक–वर्षीय पाठ्यक्रम पर आधारित अभी तक कोई 100 युवकों को बिजली–रेडियो, टी0वी का प्राथमिक प्रशिक्षण दिया जा चुका है। इस समय ये युवक या तो अपना निजी काम कर रहे हैं या प्रशिक्षण के आधार पर उद्योगों में कार्यरत हैं।

केन्द्र के परिसर में ही युवावर्ग के कम्प्यूटर प्रशिक्षण के लिये 'शारदा कम्प्यूटर शिक्षा संस्थान' का निर्माण हुआ है। यह संस्थान युवकों को भिन्न–भिन्न पाठ्यक्रमों के आधार पर प्रशिक्षण दे रहा है। अभी तक कोई 120 युवक प्रशिक्षण पा चुके हैं। अभी संस्थान की कार्यशाला में आठ कम्प्यूटर लगे हैं और एक साथ 16 प्रशिक्षार्थियों को प्रशिक्षण देने की पूर्ण सुविधा उपलब्ध है।

शोध की दिशा में केन्द्र प्रयासरत है। कश्मीरी पण्डितों की सांस्कृतिक पहचान को सर्वव्यापक एवं सर्वसुलभ बनाने के उद्देश्य से पुरातत्त्व, इतिहास, धर्म, दर्शन, भाषा, साहित्य, लिपि, लोक–जीवन और लोक–कलाओं के क्षेत्र में अनुसन्धान कार्य को प्रोत्साहन देकर कार्यशालाओं एवं विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जा रहा है।

केन्द्र द्वारा गठित समाज सुधार एवं संस्कार समिति के अन्तर्गत विशेष धार्मिक संस्कारों को सामूहिक रूप से सम्पन्न कराने की योजना के अन्तर्गत कई बार सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार समारोहों का आयोजन केन्द्र द्वारा हुआ हैं जिनमें कोई 124 बालकों को उपनयन संस्कार से संस्कारित किया गया। भविष्य में भी ऐसे संस्कार समारोह आयोजित कराने की योजना है।

कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत केन्द्र की महोत्सव समिति मुख्य धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्सवों का सामूहिक आयोजन करती है। मुख्य रूप से

शारदा अष्टमी (जो केन्द्र का स्थापना दिवस भी है) और महाशिवरात्रि महोत्सव का आयोजन उल्लेखनीय है। इन उत्सवों में समाज के प्रत्येक वर्ग के लोग भाग लेते हैं। इन उत्सवों में प्रसिद्ध विद्वानों एवं सन्त महात्माओं को आमंत्रित करके जनता को उनके बहुमूल्य विचार सुनने का अवसर प्रदान किया जाता है। शारदा अष्टमी समारोह के अवसर पर एक महायज्ञ रचाने के अतिरिक्त समाज के प्रति समर्पित किन्हीं दो महानुभावों को **'शारदा पुरस्कार'** से सम्मानित किया जाता है। अभी तक दस महानुभावों को पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। प्रति वर्ष महाशिवरात्रि समारोह के अवसर पर केन्द्र की ओर से मुद्रित एक वार्षिक केलेण्डर जनता को भेंट किया जाता है।

समय–समय पर केन्द्र द्वारा शारदा लिपि के पठन–पाठन एवं लेखन की कक्षाओं का आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त 'संस्कृत भाषा में सम्भाषण' की कक्षाओं की व्यवस्था भी की जाती है।

भारतीय जीवन मूल्यों के प्रचार हेतु उपयोगी साहित्य के प्रकाशन एवं वितरण की व्यवस्था भी केन्द्र द्वारा की जा रही है। इस सन्दर्भ में शारदा–ग्रन्थमाला के अन्तर्गत ' **शारदा** ' नाम की पुस्तिका का प्रकाशन हुआ है। एक और पुस्तिका **'हेरथ अख ज़ान'** का प्रकाशन भी हो चुका है। इसके अतिरिक्त केन्द्र के प्रकाशन प्रभाग द्वारा शारदा भूमि के महान सपूत, प्रतिभावान वैद्य, पण्डित समाज के उद्धारक श्रीमान श्रीभट्ट के विषय में पर्याप्त जानकारी प्रकाशित की गई है। साथ ही महाराजा ललितादित्य और महान दार्शनिक, साहित्यकार क्षेमेन्द्र का प्रमाणिक जीवन चरित प्रकाशित होकर देश प्रेमियों तक पहुंचाया जा चुका है। इस दिशा में आगे भी कार्यरत रहेंगे ऐसा हमारा संकल्प है। सन् 2005 ई0 में केन्द्र ने दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की। एक पुस्तक श्री प्रदीप कौल खोडबली द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में लिखी गई है । पुस्तक का शीर्षक है 'क्षेमेन्द । दूसरी पुस्तक डॉ0 महासराजकृष्ण भरत द्वारा हिन्दी भषा में लिखी गई है। पुस्तक का शीर्षक है : 'आद्यशक्ति का दिव्य स्थल – उमानगरी '

शारदा कम्प्यूटर संस्थान को 'इण्टर–नेट' के साथ जोड दिया गया है। इण्टरनेट पर केन्द्र का ई–मेल पता है:–

shardakendra31@rediffmail.com इसके साथ ही संजीवनी शारदा केन्द्र की अपनी स्वतन्त्र 'व्यब साईट' का प्रवर्त्तन भी हो चुका है। 'व्यबसाईट' के लिये पता है :– www.shardakashmir.org

इस व्यबसाईट पर निम्नलिखित उपशीर्षकों के अन्तर्गत महत्वपूर्ण सामग्री विशुद्ध रूप में उपलब्ध होगी :–

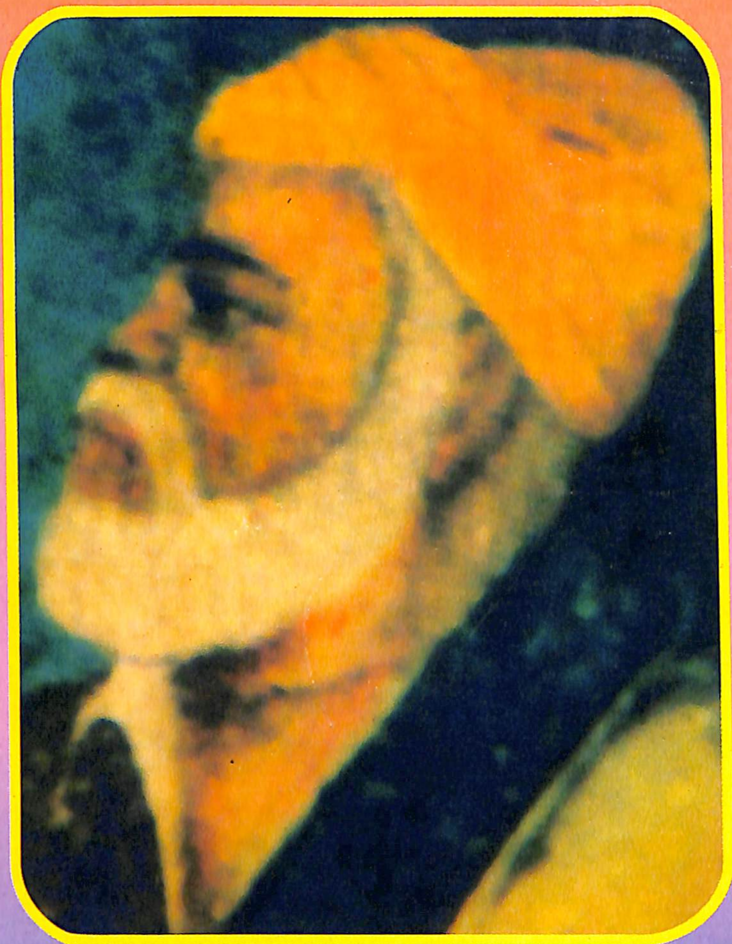
कश्मीर से सम्बन्धित इतिहास, साहित्य, संस्कृति, वास्तुकला, चित्रकला, तीर्थस्थल, डाटा बैंक आदि।

संजीवनी शारदा केन्द्र एक पंजीकृत न्यास की देख–रेख में अपनी गतिविधियां चलाने में क्रियाशील है गतिविधियों को सुचारू ढंग से चलाने हेतु कई समितियों का गठन किया गया है । यथा :–

1. व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र समिति
2. समाज सुधार एवं संस्कार समिति।
3. निर्माण एवं संस्थान कोषवृद्धि समिति ।
4. महोत्सव समिति/शोध एवं पुस्तकालय समिति।

प्रत्येक समिति अपने अपने कार्यक्षेत्र में प्रयत्नशील है और यथा सम्भव सामाजिक विकास में अपना योगदान दे रही है।

प्रो0 टी. एन. शालार
प्रधान



परमानन्द

1791–1879 ई०